हिन्दी सतसई परम्परा में

दयाराम सतसई

आचार्य रघुनाथ भट्ट

एम० ए०, साहित्याचार्य



हिन्दी साहित्य परिषद

अहमदाबाद

HINDI SATSAI PARMPARA MEN DAYARAM SATSAI

by Raghunath Bhatt

प्रकाशक—हिन्दी साहित्य परिषद, अहमदाबाद

लेखक—आचार्य रघुनाथ भट्ट

संस्करण—दूसरा, 1989

मूल्य—पुस्तकालय संस्करण 50 00
विद्यार्थी संस्करण 25 00

मुद्रक—शिव प्रेस, इलाहाबाद

मुख्य वितरक



जयभारती प्रकाशन

इलाहाबाद

शुभाशंसा

'हिन्दी सतसई परम्परा मे दयाराम सतसई' प्रि० रघुनाथ भट्ट की दयाराम सतसई पर लिखी गई बोध वर्धक समीक्षा है।

दयाराम गुजरात के महान् कवियों मे से एक हैं। उन्होंने आज से करीब दो सौ वर्ष पहले ब्रजभाषा मे ४७ ग्रन्थों और हजारो गेय पदों का प्रणयन किया था। इस सुकवि की ब्रजभाषा-रचनाओं में 'सतसई' सर्वोत्कृष्ट है। कुछ दशक पहले तक इस रचना से हिन्दी सेवी ससार अपरिचित था। इसीलिए न तो हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखकों का ध्यान इसकी ओर आकृष्ट हुआ और न 'सतसई-सप्तक' में इसे स्थान मिल सका। इस कृति का मेरे द्वारा सम्पादित प्रथम सटीक सस्करण आचार्य प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र की भूमिका के साथ सन् १९६८ में साहित्य भवन, इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ। दूसरा छात्र-सस्करण वहीं से १९७९ मे प्रकाश मे आया। तभी से इस कृति

की ओर विद्वानों का ध्यान आकर्षित हुआ है और कुछ विश्वविद्यालयों के स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम में भी इसे समुचित स्थान मिला है।

दयाराम सतसई हिन्दी सतसई परम्परा की एक महत्वपूर्ण कड़ी है। इसमें एक ओर तो शुद्धाद्वैत और पुष्टिमार्ग का सशक्त प्रतिपादन है, दूसरी ओर इसमें काव्य-कला का भी चरमोत्कर्ष देखने को मिलता है। यह कृति भक्ति और शृङ्गार का अद्भुत अपूर्व ग्रन्थ है। इस मौलिक कृति के मर्म को उद्घाटित करने के लिए शास्त्रीय समालोचना की आवश्यकता बनी हुई थी। इसकी पूर्ति प्रो० रघुनाथ भट्ट के द्वारा लिखी गई प्रस्तुत कृति से हुई। प्रो० भट्ट संस्कृत के आचार्य हैं। भाषा विज्ञान के भी वे अध्येता हैं। हिन्दी के स्नातकोत्तर विभाग के अध्यक्ष हैं। गुजराती भाषा एवं साहित्य में भी उनकी गहरी रुचि है। इसलिए 'सतसई' पर लिखने के लिए वे सर्वथा उपयुक्त व्यक्ति हैं। उन्होंने अत्यन्त परिश्रम से कवि श्री दयाराम के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालते हुए सतसई परम्परा में तुलनात्मक दृष्टि से दयाराम सतसई का स्थान निर्धारित किया है। विद्वान लेखक ने कवि की भक्ति भावना, प्रेम भावना, नायिका भेद, रूप वर्णन, नीति, कवि के काव्य विषयक विचार तथा भाषा शैली का सम्यक् विवेचन किया है। मुझे विश्वास है इस समीक्षा से इस मौलिक एवं महत्वपूर्ण ग्रन्थ के अध्ययन-अनुशीलन का पथ प्रशस्त होगा।

अम्बाशंकर नागर
आचार्य एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग
निदेशक
भाषा साहित्य भवन
गुजरात युनिवर्सिटी
अहमदाबाद—९

भाषा-साहित्य भवन
गुजरात युनिवर्सिटी
अहमदाबाद—९
७-६-८४

12

• निवेदन

गुजरात मे हिन्दी के प्रति एक अपनत्व रहा है। हिन्दी भाषी क्षेत्रो के बाहर रहकर भी यहाँ के सन्तो, कवियो और चिन्तको ने हिन्दी म अपनी बात कहने मे गौरव समझा है। अखा हो या भालण, ब्रह्मानन्द हो या दयाराम—सबने अपनी मातृभाषा गुजराती मे साहित्य-सर्जन के साथ हिन्दी म भी उतने ही लाड प्यार से साहित्य-निर्माण की ओर यशस्वी प्रयास किया है। हिन्दी के प्रति निष्ठा की यह गगा आज भी उतने ही अनाविल भाव से प्रवहमान है। वास्तव मे हिन्दी को गुजरात पर गौरव है और गुजरात हिन्दी को अपनी समझता है।

गुजराती और हिन्दी म समान रूप से साहित्य निर्माण करन वाले प्रमुख कवियो मे बहुश्रुत, बहुविद्, नागरिकता मे पूरे पगे हुए भक्त शिरोमणि दयाराम सबसे आगे हैं। दयाराम ने गुण और मात्रा की दृष्टि से उत्तम काव्य प्रदान किया ह। परन्तु हिन्दी ससार दयाराम और उनकी कृतियो स अपरिचित ही रहा है। केवल 'मिश्रबन्धु विनोद' मे उनका विवरणात्मक उल्लेख मिलता है। अन्य इतिहास ग्रन्थ प्राय मौन हैं। हो सकता है कि धार्मिक घेरेबन्दी म रहने के कारण या गुजरात जसे सुदूर प्रदेश म रहने से दयाराम का हिन्दी-साहित्य प्रकाश मे न आ सका हो।

इधर स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् हिन्दीतर प्रदेशो म हिन्दी के शोध-अनुसन्धान का कार्य शुरू हुआ है। गुजरात मे इस कार्य को व्यवस्थित रूप देने का श्रेय सर्वतोमुखी प्रतिभा के धनी गुजरात विश्वविद्यालय के भाषा-भवन के निदेशक और हिन्दी विभाग के अध्यक्ष श्रद्धेय डॉ० अम्बाशकर नागरजी को है। उन्होने गुजरात के अनक कवियो तथा उनके ग्रन्थरत्नो को हिन्दी जगत् के सामन रखा है। अनेक कठिनाइयो के दौर से गुजरकर उन्होने दयाराम कृत 'सतसई' का सुन्दर सम्पादन कर हिन्दी की अनन्य सेवा की है। दयाराम के दूसरे ग्रन्थ 'रसिक रजन' का भी सुसम्पादित सस्करण अभी कुछ दिन पहले डॉ० नागरजी के सम्पादकत्व मे प्रकाशित हुआ है।

इस तरह दयाराम की साहित्यिक कृतियाँ प्रकाश मे आ रही हैं। हिन्दी ससार मे उनका स्वागत हो रहा है। हिन्दी की अनुस्नातक कक्षाओ

मे उन्हें निमत्त किया जा रहा है। परन्तु दयाराम के विषय में कोई स्वतन्त्र आलोचनात्मक पुस्तक न होने से अध्यापकों और विद्यार्थियों को इसकी आवश्यकता महसूस होने लगी। प्रस्तुत पुस्तक इस आवश्यकता की पूर्ति की दिशा मे पहला कदम है।

इस अध्ययन मे डॉ० नागरजी द्वारा सम्पादित 'सतसई' के पाठ को आधार माना गया है। इसमें मेरा लक्ष्य दयाराम के विषय मे उपयोगी जानकारी और हिन्दी सतसई परम्परा मे दयाराम सतसई को रखकर उसका आलोचनात्मक अध्ययन करना रहा है।

प्रस्तुत कार्य की प्रेरणा मुझे श्रद्धेय गुरुवर्य डॉ० नागरजी से मिली है। उनके ही प्रोत्साहन से इसे प्रकाशित करने का साहस भी किया है। उनका ऋणी हूँ, उपकृत हूँ। पूज्य मातुल साहित्याचार्य श्री रामेश्वरप्रसाद पालीवाल, स्नेही मित्र प्रो० श्री करुणेश शुक्ल, डॉ० नवनीत गोस्वामी तथा साथी मित्र प्रो० ओ० पी० गुप्त एवं डॉ० कृष्णा गोस्वामी का मैं आभारी हूँ जिन्होंने इस कार्य को पूरा करने मे सहयोग दिया है।

इस पुस्तक को तैयार करने में गुजराती के अनेक विद्वान् लेखकों की कृतियों से मदद ली गई है उन सबका मैं विनम्र भाव से ऋण स्वीकारता हूँ और उनके प्रति आभार की भावना व्यक्त करता हूँ। अन्त मे उत्साही प्रकाशक डा० बादामसिंह रावत को धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने थोड़े ही समय मे इसे प्रकाशित करने का सकल्प पूरा किया है।

रामनवमी, —रघुनाथ भट्ट
१० अप्रैल, १९८४

दूसरा सस्करण

छात्रों के लिए उपयोगी सस्करण की माग थी। इसलिए यह सस्करण प्रस्तुत किया जा रहा है।

—रघुनाथ भट्ट

विषय-सूची

१ ‖ दयाराम : व्यक्तित्व

दयाराम बहुपार्श्वी हीरा थे। उनका प्रत्येक पहलू आवदार था। उनका जीवन अद्भुत था और व्यक्तित्व अजोड़। अनेक दन्त कथाओं के आधार थे अनेक भावधाराओं के स्रोत। छोटी उम्र में ही निराधार बन गये थे, सिर पर किसी की छत्र-छाया नहीं थी। अकुलीनता ने उन्हें नटखट बना दिया। किसी पनिहारिन की मटुकी पर पत्थर दे मारा। बात बढ़ी तो पलायन करना पड़ा। नदी तट पर बाबा धाम करनाली पहुँच गए। लोकापवाद के भय ने दिल दुखा दिया था। बाबा केशवानन्द से संन्यास लेने की ठानी। बाबा ने विचार का प्रस्ताव ठुकरा दिया। गुस्से में आकर दयाराम ने साधु निंदा पर एक लावणी रच डाली।[1] आक्रोश ने कविता को जन्म दिया।

किशोर दयाराम का गला सुरीला था। इसलिए भजन और कीर्तन मण्डलियों में स्वाभाविक रूप से उन्हें प्रवेश मिल गया। भजन मंडलियों के साथ वे विभिन्न स्थानों पर भजन-कीर्तन में सम्मिलित होने लगे। एक बार एक भजन मंडली के साथ गुजरात के प्रसिद्ध वैष्णवतीर्थ डाकोर जी की यात्रा पर जाते समय उनकी भेंट परम भागवत और प्रतिष्ठित वैष्णव विद्वान् श्री इच्छाराम भट्टजी से हुई। प्रथम मुलाकात में ही दयाराम का मन भट्टजी के प्रति समर्पित हो चुका था। भट्टजी ने इस तेजस्वी बालक को हृदय से आशीर्वाद दिया—"वत्स! तू जितेन्द्रिय होगा, तेरी कामनाएं पूर्ण होंगी।"[2] इस मिलन से दयाराम की अनेक शंकाएं निर्मूल हुई और जीवन में एक नया मोड़ आया। भट्टजी के उपदेश से दयाराम तीर्थ-यात्राओं पर निकल पड़े। अनेक बार उन्होंने तीर्थ यात्राएं कीं। इन तीर्थ यात्राओं ने उन्हें जहाँ एक ओर बहुश्रुत, बहुविद् बनाया वहाँ दूसरी ओर जीवन के सभी पहलुओं को प्रत्यक्ष देखने का भी मौका प्रदान किया। लोक-जीवन के इस विस्तृत निरीक्षण

---

१ देखिए बृ० का० दो० भाग-५ पृ० ७।

२ थाश जितेन्द्रिय शीघ्र तू फळशे सब काम।
श्री वल्लभ नाम थी, वच श्री इच्छाराम॥

—बृ० का० दो० भाग-६, पृ० ३५९

ने उनकी दृष्टि पैनी कर दी थी। उनके अनुभव की कसौटी पर चढ़कर जो निकला वह शुद्ध द्वादशवर्णी सोना था।

दयाराम के यायावरी जीवन ने उन्हें जितना कठोर बनाया उतना विनीत भी बना दिया था। स्वाभिमान के वे पूरे रक्षक थे और अभिमानी के जानी दुश्मन। कृष्ण के प्रेम में आकंठ निमग्न थे। प्रत्यक्ष और स्वप्न की भेद रेखा उनके कृष्ण प्रेम की सीमा में आकर अस्तित्व हीन हो गई थी। यह उनका कृष्ण प्रेम ही था जिसने उन्हें कृष्ण की भाषा (ब्रजभाषा) में लिखने के लिए प्रेरित किया।[1] ब्रजभाषा में प्रचुर मात्रा में प्राणवान् साहित्य रचकर दयाराम हिन्दी साहित्याकाश में एक उज्ज्वल नक्षत्र के रूप में हमारे सामने आते हैं।

गुजरात प्रदेश का नर्मदा का किनारा बड़ा सुहावना है। उसमें भी बड़ौदा जिले के चाणोद-करनाली से गुजरता हुआ किनारा तो प्राकृतिक सुषमा का भंडार है। यहाँ ओरसंग नदी का नर्मदा से संगम होता है। इससे यह स्थान पवित्रता के कारण 'दक्षिण प्रयाग' के रूप में पुकारा जाता है। इसके उत्तर में चाणोद गाँव है जहाँ शेषशायी भगवान् विष्णु का मन्दिर है। अधिकतर यहाँ ब्राह्मणों की बस्ती है। इस गाँव के एक मुहल्ले कपालपुरी में साठोदरा नागर ब्राह्मण परिवार रहता था। परिवार के स्वामी थे प्रभुराम भट्ट और गृहस्वामिनी थी श्रीमती राजकोर। इस भाग्यशाली दम्पति के यहाँ सं० १८३३ वि० के भाद्रपद शुक्लपक्ष वामन द्वादशी के लगते ही शनिवार के दिन बालक दयाराम का जन्म हुआ।[2]*

---

१ वेद बड़े गिरबान तें, नारायन की बानि।
ब्रजभाषा कल ताहितें, ब्रजपति भक्ति मुख आनि॥
—द० सतसई दोहा ७०८

२ श्री गुरुगुजरदेशमधि, दक्षिन प्रयाग सचीर।
महासरित श्री नमदा, अति शुठि उत्तर तीर॥
निकट तहाँ चंडिपुरि, विप्रन को शुठि थान।
जिहों राजत हैं सदाश्री, शेषसाई भगवान्॥
सो पुरि-मध्य निवास कवि, दयाराम हरिदास।
जानि विप्र साठोदरा, नागर ख्याति प्रकाश॥
— दयाराम सतसई—डा० अम्बाशंकर नागर

(* टिप्पणी अगले पृष्ठ पर)

श्री प्रभुराम और राजबोर दोनों साधु प्रकृति के थे। कृष्ण उपास्य थे और पुष्टिमार्ग में उनकी अटल आस्था थी। कहते हैं कि यह परिवार मूलत वैदिक ब्राह्मणो की महादेवोपासक शाखा में संबद्ध था और पश्चात् पुष्टिमार्ग का अनुयायी हो गया था। दयाराम ने अपनी अनेक रचनाओं में और अन्यत्र अपना नाम 'दयाशंकर' भी बताया है। सम्भवत इसमें वैदिक परम्परा का हाथ रहा हो।[१]

वल्लभ सम्प्रदाय के नियमानुसार बचपन में ही दयाराम को 'श्रीकृष्ण शरण मम' मन्त्र की नामदीक्षा दी गई थी। इस मन्त्र के दाता के रूप में गोस्वामी देवकीनंदन जी का नाम लिया जाता है परन्तु अभी इसका समर्थन होना शेष है। ८वें वर्ष की आयु में दयाराम का उपनयन संस्कार बड़े धूम-धाम से सम्पन्न हुआ था। वत्सल पिता प्रभुराम ने पुत्र को स्थानिक ग्रामीण पाठशाला में पढ़ने के लिए रखा। पिता की यह इच्छा थी कि पुत्र संस्कृत पढ़े और इसलिए उन्होंने बड़ोदा की संस्कृत पाठशाला में प्रबन्ध करा लिया था। इसी बीच उन्होंने पुत्र के विवाह के लिए बात शुरू की और गंगा नाम की एक कन्या खोज भी निकाली थी। परन्तु दुर्भाग्य बीच में आया और कन्या की अचानक मौत हो गई। दूसरी जगह खोजने जा रहे थे कि प्रभुराम जी का

---

* संवत अष्टादस तेत्तीस शाके सोल ननान्‌।
भादों अमलपक्ष तिथि द्वादसि जानिये॥
शनीवार नक्षत्र श्रवण योग असोगंज।
रवि उदय गत घटी, इकतालीस म्हैं जानिये॥
दुजे राहु तीजे गुरु, शुक्र उभय, चौथे बुध।
रवि पंचम छट्ठे शनि, सप्तम कुज मानिये॥
अष्टम केतु नौं ससि, यह विधि के जन्माक्षर।
कृष्णदास 'दयाराम' ताके उन आनिये॥
—देखिए—कृष्णजन दयारामभाई ले० जी० छ० जोशी,
संकलित ग्रहज्योतिषरो० के० का० शास्त्री, पृ० १४४।

१ दयाशंकर दर्भावती सेवे मूल चाणोद निवास।
सं० १८३३ शाके १६९९ भाद्रपद सुदि ११ उपरांत १२ जन्मतिथि शनिवासरे उत्तराषाढ़ा घटी ४१ उपरांत अतिगंज जन्मयोगे श्री रवि उदित घटी ४१-४२ समये जन्म भाई दयाशंकरस्य।
[कवि की जन्म पत्रिका से प्रा० स्वा० जी० छ० जोशी]

अचानक अवसान हो गया। बालक दयाराम की आयु उस समय १० वर्ष की थी। दो वर्ष बाद दयाराम के सिर से माता का साया भी उठ चुका था। इस प्रकार १२ वर्ष तक पहुँचते दयाराम मातृ पितृ विहीन होकर अनाथ बन चुके थे। दयाराम के पालन-पोषण का भार उनके चाचा की पुत्री धनगौरी तथा मौसी देवका ने अपने ऊपर ले लिया। दयाराम का ननिहाल डभोई में था। इसलिए चाणोद और डभोई के बीच दयाराम आते जाते रहे। कहते हैं कि चाणोद में ही किसी पनिहारिन की मटकी पर पत्थर मारने के कारण जब हो हल्ला हुआ तो दयाराम को चाणोद छोड़ना पड़ा।[1] पश्चात भजन-कीर्तन करने लगे। एक दिन ऐसी ही किसी एक भजन मंडली के साथ दयाराम गुजरात में प्रसिद्ध तीर्थ स्थान डाकोर के लिये प्रस्थित हुए। चाणोद और डभोई के बीच में 'तेन तलाव' नामक एक स्थान पर गुजरात के परम भागवत और प्रख्यात विद्वान् इच्छाराम भट्टजी के दर्शन का सुयोग दयाराम को मिला। यह प्रथम मुलाकात थी। श्री भट्टजी महाराज के सम्पर्क से दयाराम कृत कृत हो गये और एक दिव्यदृष्टि का आविर्भाव उनमें हो गया।[2]

भट्टजी की प्रेरणा से दयाराम ने लम्बी-लम्बी दीर्घकालीन तीर्थयात्राएं कीं। भारत के सभी तीर्थों के उन्होंने तीन-तीन बार दर्शन किये। कृष्ण भक्ति के परम धाम श्रीनाथद्वारा के ७ बार दर्शन किये। डाकोर आदि छोटे छोटे तीर्थ स्थानों की अनेक बार यात्राएं सम्पन्न की। इन यात्राओं के विषय में दयाराम के अध्येता विद्वानों में मतभेद हैं। परन्तु दयाराम की गुजराती कृति 'रसिक-वल्लभ' के पद ४ से १०वें तक जो यात्रा वर्णन हुआ है वह उनकी प्रथम तीर्थ यात्रा का वर्णन प्रतीत होता है। दयाराम साहित्य के सम्पादक और अध्येता श्री जीवनलाल जोशी के अनुसार दयाराम की यह प्रथम यात्रा उनके १४वें वर्ष से २५वें वर्ष या १५वें वर्ष से २७वें वर्ष की उम्र में सम्पन्न

---

१ रसिकवल्लभ भूमिका सं० जे० सी० शाह, पृ० ४-५।

२ सद्गुरु शकानो निर्धार कीधो, मल्या भक्तिनिष्ठ।
भटटजी महाराज कहावे, डाकोराधीश जेना इष्ट॥
—दयाराम　ले० मोतीराम साडेसरा, प० ६।

यात्रा जितेन्द्रिय शिघ्र तू, पक्व थशे तव काम।
श्रीवल्लभना नामथी, बध थो इच्छाराम॥
—बृ० का० दो० भा० ६, पृ० ३५६।

हुई है।[1] दयाराम की दूसरी तीर्थयात्रा उनके जीवन के ३१वें वर्ष से शुरू होकर ७ वर्षों तक चलती रही। तीसरी तीर्थयात्रा दयाराम के जीवन के ५३वें वर्ष से आरम्भ होकर ५६वें वर्ष की आयु में समाप्त हुई। इस प्रकार जीवन के बहुमूल्य वर्ष दयाराम ने यात्रा पर्यटना में बिताये हैं। इन यात्राओं के अन्तराल में कवि प्रायः चाणोद और अपने ननिहाल के गाँव डभोइ में रहे हैं परन्तु जीवन के अन्तिम वर्ष डभोई में ही व्यतीत हुए हैं।

दयाराम को विधिवत् पढ़ने-लिखने का मौका नहीं मिला। पिता ने प्राथमिक ग्रामीण पाठशाला में रखा, लेकिन पढ़ाई पूरी नहीं हो सकी। माता-पिता के देहान्त के कारण जीवन निराधार होने से भजन मंडलियाँ और यात्राएँ ही उनके जीवन के शिक्षक बने। यात्राओं ने उनके जीवन के अनुभव-कणों को जुटाने में महत्वपूर्ण काम किया। उस जमाने में यात्राएं पैदल होती थीं। संघ बनाकर लोग यात्रा पर चल पड़ते थे। अनेक स्थानों पर परिचय होता था, नाना प्रकार के लोगों के सम्पर्क में आया जाता था। सभी साधु, विद्वान् इन यात्राओं में सम्मिलित होते थे। गाँव-गाँव, शहर-शहर, जंगल-मैदानों और घाटियों से ये यात्राएं गुजरती थीं। अनेक प्रकार के अनुभव यात्रियों को होते थे। तीर्थ स्थानों में बड़ी-बड़ी सभाएँ होती थीं। वाद-विवाद चलते थे, शास्त्रार्थ होते थे। अनेक प्रसिद्ध विद्वान् उपदेशक और धार्मिक नेता अपने मतों का प्रतिपादन और प्रतिपक्षी मतों का खण्डन करते थे। समस्त भारतीय मेधा यहाँ एकत्र होती थी। अनेक विषयों पर विचारों का आदान प्रदान होता था। इस तरह तीर्थाटन उन दिनों व्यक्ति के अभ्यास और व्युत्पत्ति का एक सबल स्रोत माना जाता था। दयाराम को इन तीर्थाटनों से पर्याप्त लाभ मिला और वे बहुविद् और बहुश्रुत बन गये। बिना-पढ़े लिखे ही पंडित बन गये। अपनी मातृ भाषा गुजराती के अतिरिक्त पंजाबी, मराठी, तेलगु, तमिल आदि प्रान्तीय भाषाओं की अच्छी जानकारी उन्हें प्राप्त हो गई थी। राजस्थानी तथा हिन्दी के पश्चिमी और पूर्वी दोनों रूपों में रचना करने की क्षमता उन्होंने हासिल कर ली थी। ब्रजभाषा उन दिनों उत्तर भारत की धार्मिक तथा साहित्यिक भाषा थी। अतः गुजराती के पश्चात् दयाराम ने ब्रजभाषा में प्रभूत मात्रा में रचनाएँ की हैं।

---

१ कृष्णजन दयाराम भाई ले० श्री० छ० जोशी।
(व्रज ज्योतिधरो सं० के० का० शास्त्री, पृ० १४५ परिशिष्ट-५)

दयाराम को बचपन में धार्मिक संस्कार मिले थे। जीवन की परिस्थितियों ने उन्हें दृढ़ किया और वे सर्वात्मना कृष्ण के प्रति समर्पित हो गये थे। कृष्ण ही उनके सब कुछ थे, वे कृष्ण की दया पर ही थे। कृष्ण उनके सामने आते थे, उनके साथ लीला करते थे। कृष्ण के अनन्य भजन में उनका अव्याहत प्रवेश था। कृष्ण का उन्होंने वरण कर लिया था। दूसरी कोई उन्हें चिन्ता न थी।[1] प्रथम यात्रा के पूर्ण होने पर सं० १८४८ या सं० १८६० में श्रीनाथद्वारा में श्रीनाथ जी के सान्निध्य में श्रीवल्लभ जी महाराज ने दयाराम को ब्रह्म सम्बन्ध दीक्षा दी।[2] दीक्षा लेने के पश्चात् वे सम्पूर्ण रूप से भक्ति-भाव में लीन हो गये। उनकी भक्ति भावना और प्रेम भरे गीतों की कीर्ति-गाथा सर्वत्र फैल गई थी। सारे गुजरात से उन्हें आदर और सत्कार के साथ कथा-कीर्तन के लिए निमन्त्रण मिलने लगे थे। अनेक नर-नारियाँ उनके प्रति आकर्षित होकर उनके शिष्य मंडल में सम्मिलित हो गई थीं। भजन-कीर्तन ही उनका अवलम्ब था।

वि० सं० १८८८ में कवि ने श्रीनाथद्वारा की यात्रा की और वहाँ से आकर रोग ग्रस्त हो गये। रोग बढ़ता गया और कमजोर शरीर में अनेक व्याधियाँ घर करने लगीं। १२ वर्ष तक दयाराम इन रोगों से लड़ते रहे। कवि नर्मद इन रोगों के विषय में कहते हैं—"दयाराम का शरीर ज्वर भगन्दर, प्रमेह, सारण गांठ और अंडवृद्धि से पीड़ित था।[3] दयाराम का दवा-दारू पर विश्वास न था। वे कहते थे "मृत्यु को दवा दारू से नहीं टाला जा सकता है। शरीर के दुःखों को शरीर ही भुगतेगा।" कवि को मृत्यु की प्रतीति होने लगी थी। आत्मश्राद्ध वे पहले ही कर चुके थे। अपनी सम्पत्ति के बटवारे के विषय में वि० सं० १८६२ में जो 'वसीयत' लिखकर रख दी थी।

---

१ एकदा श्रीमदनमोहन जी कही वैष्णव को यो,
याको सब प्रेरो हो और विचारत हों कया।
एतो मेरो दयासखी है मो अति प्यारो,
याकी तुम फोरी आज करो नी के मनुहारो।।
—अनुभव मंजरी

२ श्रीगुरु वल्लभलाल जुगल पद करू प्रनामा।
पुरन ग्रन्थ करवाय निजदास निवार्यो ताप।।
—वस्तु वृन्द दीपिका द० कृ० काव्य संग्रह, पृ० १८६।

३ जूनु नर्मगद्य(गुज०) पृ० ६८९।

दि० सं० १९०९ के माघ मास के कृष्ण पक्ष की पंचमी, सोमवार के दिन प्रात: ९ बजे इस परम भागवत कृष्ण प्रेमी कवि और भक्त ने डभोई में अपने नश्वर देह का त्याग कर श्रीकृष्ण के नित्य लीला-धाम में प्रवेश किया।[1]

दयाराम रमणीय दर्शनता के साथ अवतरित हुए थे। रंग उनका एकदम गोरा-चिट्टा था। त्वचा मुलायम और चमकीली थी। ललाट चौड़ा था। आँखें तेज थीं। दो गुलाबी होंठ पान की रक्तिमा से हमेशा रञ्जित रहते थे। पारदर्शी कण्ठ था जिसमें से गुजरती हुई पान की लाली झाँकती थी। क्षीण कटि पर विशाल वक्ष था। कद मझौला था हाथ-पैर नाजुक और मुलायम थे। मुख लम्बा और नाक धारदार थी। मूछें छोटी और नुकीली थीं। सारा शरीर पतला था पर था गठीला।[2]

वस्त्रों के प्रति दयाराम को बड़ा अनुराग था। अच्छे वस्त्र पहनते थे। माथे पर लाल-गुलाबी ब्रजवासी पाग या लाल चटकदार साठीदरी पगड़ी धारण करते थे। मलमल का सुन्दर अँगरखा जिसके गले, पीठ, कलाई और कन्धों पर बेल बूटे कढ़े हुए रहते थे, पहनना पसन्द करते थे। कन्धों पर मृदुल-मसृण लाल किनारी वाला दुपट्टा शोभित रहता था। पैरों पर बढ़िया राजस्थानी कामदार-जूतियाँ पहनते थे। समय, स्थान और अवसर के अनुसार कपड़े धारण करते थे। ब्रज में ब्रजवासी पोशाक पहनते थे, गुजरात में गुजराती वस्त्र धारण करते थे। कपड़े पहनने का भी उनका अपना-तरीका था। धोती को आगे और पीछे की लांग का ठीक करते-करते कहते हैं, उन्हें आधा घंटा लगता था। सिलाई दुरुस्त हो—इसका वे विशेष ध्यान रखते थे। एक बार उनके एक प्रिय दर्जी ने अंगरखे को कन्धों से कुछ ढीला कर दिया तो कवि ने चिढ़कर दर्जी के सिर कलमदान दे मारा। पान के साथ इत्र के भी शौकीन थे। दिन में पचास पान खाते थे। कपड़ों पर इत्र का एक हाथ फिरा हुआ रहता। इसलिए जिस ओर चलते सुगन्ध का एक झोंका उनके पीछे चलता रहता था।

दयाराम सुन्दरता की मनोहर मूर्ति थे। सुन्दर कपड़ा के प्रेमी और पान के अनुरागी। पान-राग रंजित अधरों पर हँसी की थिरकना हुई गति के

१ देखिए गु० का० दोहन भाग ५, पृ० ४२।
२ जूनुंनरमद (गुज०) पृ० ४८२।

साथ उनके पीछे कोमल स्वभाव और भावनाओं के मन आकर्षित कर लेते थे। जहाँ जाते थे वहाँ आकर्षण के केन्द्र बन जाते थे। इसने अनेक स्निग्धहृदया और कपोल-कल्पनाओं को जन्म दिया। कहते हैं कि किशोरावस्था में पदार्पण करते ही यौवन-सुलभ चापल्य के कारण उन्होंने पनिहारिनों की गगरियों को अपने कंकड़ों का निशाना बनाना शुरू कर दिया था। युवावस्था के विकसित होते ही यह प्रवृत्ति अधिक बढ़ी होगी। उनकी भक्ति में प्रेम प्रवाह सा होता ही है। अनेक नारियाँ उन पर मुग्ध थीं। उनका कुछ ऐसा प्रभाव था कि गुणी गुजरातिनें उन पर न्यौछावर थीं। उनकी एक-एक अदा पर फिदा था। अनेक नारियाँ उनके जीवन में जुड़ गईं। उनमें एक कमलाबाई थी, दूसरी रतनबाई थी, एक तृतीया भी नामित थी। गुजरातिन रतनबाई तो अन्तिम समय तक कवि के साथ रही और कवि ने उनके लिए ७५ रुपए की व्यवस्था अपने वसीयतनामे में की। गुजराती साहित्य के कुछ विद्वानों और दयाराम के चरित्रकारों ने इस विषय को लेकर काफी स्पष्ट और मण्डनात्मक सामग्री प्रस्तुत की है। परन्तु तथ्यों और प्रवादों की तह में जाकर इतना कहा जा सकता है कि दयाराम प्रेमी जीव थे, रसिकता में पूरे पगे थे। रसिकता की कुछ बूँदें इधर-उधर छलक कर उनके ऐहिक जीवन को आर्द्र कर गई हों तो इसे अचरज का विषय नहीं बनाना चाहिए। सामान्यजन जिसे पाप-पुंज कहते हैं रसिकों के लिये मोक्ष का साधन होता है। सन्तों का जीवन ही ऐसा होता है जिसका अनुसरण सबके वश की बात नहीं होती है। सन्त जो कुछ करते हैं समझ-बूझकर ही करते हैं।[1]

दयाराम के प्राथमिक शिक्षक श्री बापाराम रावल की यह भविष्यवाणी कि दयाराम आगे चलकर अच्छा गायक बनेगा सिद्ध हुई। दयाराम गायक तो बने ही साथ ही संगीत के आराधक भी बने। उनकी संगीत साधना बेजोड़ थी। अनेक वाद्ययन्त्रों के बजाने में उन्होंने निपुणता प्राप्त कर ली थी। मृदंग और तबले में पारंगत थे तो जल तरंग के उस्ताद। वीणा पर उनका

१ बड़े करें सब छमुति के भूले नहिं को ठौर।
विधि जिमि बेटी पर चित्त धर्यो नहि कछु कारन और॥
सब रस भोगें सन्त कबु तहु रहे निष्पाप।
स्निग्ध पयी रसना जिमि, अलेप अगन प्रताप॥
—डॉ० नागर दयाराम सतसई छन्द ३७८ । ६०८ ।

पूरा अधिकार था तो तम्बूरा उनका प्रिय साज था। हाथ मे तम्बूरा लेकर जब वे भक्ति-भाव मे निमग्न होकर गाते थे तो स्वर्गीय आनन्द का वातावरण सभा मे छा जाता था।[1] वे बडी-बडी सगीत-महफिलो म जाते थे। अनेक जगहों से उन्हें सम्मान के साथ आमन्त्रण मिलता था। बडौदा के महाराजा सयाजीराव द्वितीय, फतेहसिंहराव गायकवाड आदि महानुभाव प्राय उन्हें बुलाते थे। रातभर सगत चलती थी। श्रीनाथद्वारा म उनके सगीत ने भक्तो के दिल जीत लिये थे। वैष्णवो के यहा तो उनका भजन-कीर्तन होता ही रहता था। सारे गुजरात मे उनकी धूम थी।

दयाराम सगीत के शौकीन ही नही अपितु अच्छे मंजे हुए जानकार भी थे। एक बार बडोदा की एक सगीत महफिल मे दयाराम के शिष्य गिरिजाशकर और रणछोडभाई कथा-कीर्तन कर रहे थे। तबले पर सगत गिरिजाशकर कर रहे थे। तबला बजाने मे उनसे कोई भूल हो गई। श्रोताओ मे स एक साधु से न रहा गया। उसने उठकर भूल बताई। सयागवश दयाराम भी उस सभा म उपस्थित थे। दयाराम ने साधु को समझाया कि भूल तो सबसे होती है। साधु ने प्रत्युत्तर दिया—"उस्तादो को भूल नही करनी चाहिए।" दयाराम तैस मे आ गये और कहा—"पकडो तबला, मैं गाता हूँ।" साधु तैयार। सारी रात सगत करते रहे, दयाराम गाते रहे। साधु हारा नही। दयाराम रुके नही। भोर होते ही दयाराम ने एक अटपटा राग गाया, साधु थोडे हिचकिचा गये। दयाराम जीत गये। लोग दयाराम पर खुश थे। दयाराम साधु की उस्तादी पर फिदा थे। उन्होने अपने कण्ठ का स्वणहार निकालकर साधु के गले पर डाल दिया। सगीत पर ऐसा न्यौछावर व्यक्तित्व था दयाराम का।

दयाराम के गले मे अजब मोहिनी थी। एक बार यात्रा-मडली म डाकुओ के हाथ म आ गए। मण्डली के तीन यात्रियो की हत्या नृशस डाकुओ ने कर दी और दयाराम को कैद कर सुदूर हैदराबाद ले गए। डाकुओ का सरदार कुख्यात मराठा डाकू आणाजी था। दयाराम के कर्णप्रिय भजनो को सुनकर उसका दिल पसीज गया और भोजन खर्च देकर कवि को मुक्त कर दिया। यह दयाराम के गले का जादू था।[2]

---

१ भक्त कविवर दयाराम दयाराम शताब्दी स्मृति ग्रन्थ पृ० १४०। ले० शान्तिलाल बो० जोशी।

२ देखिए बृ० का० दो० भाग—२, पृ० २४ (गु०)

दयाराम का भारतीय सङ्गीत और कीर्तन पद्धति का अच्छा परिचय था।[1] अनेक राग रागनियाँ वे गा लेते थे। ग्राम, तार और लय के गम्भीर पारखी थे तथा उसकी प्रकृति के महत्त्व से अवगत थे। अनेक साधु-सन्त और फकीर उनके पास सङ्गीत सीखने आते थे।[2] दयाराम के पास पाँच तम्बूरे, एक बारह जोड़ी तबले, २ मृदङ्ग और सारंगी, बीन, सुरमण्डल, सितार, जल-तरंग चंग और करताल हमेशा रहते थे। इनमें से आज दयाराम की स्मृति के रूप में दो तम्बूरे, दो जोड़ी तबले, छोटा मृदङ्ग अवशिष्ट हैं।

दयाराम स्वभाव के तेज थे। जीभ उनकी धारदार थी। 'ना' कहने के धनी थे।[3] स्वाभिमानी पक्के थे। किसी की धौंस के ताबेदार नहीं थे। बात पर मरने वाले थे। गुस्सा गजब का था। राजा महाराजाओं की उन्हें परवाह नहीं था। धर्मगुरुओं की लीला को जानते थे। अमीरों के चापलूसी के कायल न थे। स्वतन्त्र जीव थे। न अमीरों से लेने की आशा थी और न साधों को देने को लालायित। अपनी मर्जी के बादशाह थे।

एक बार विट्ठलेश महाराज डभोई पधारे। सब वैष्णवों ने मिलकर महाराज का भावभीना स्वागत किया। परन्तु वैष्णव होने पर भी दयाराम को इस समारोह में जाना उचित न लगा। बुलाने पर उन्होंने कहला भेजा कि वे इस शर्त पर ही समारोह में उपस्थित रह सकते हैं कि उन्हें और श्री विट्ठलेश जी को समान ऊंचाई वाले आसनों पर बिठाया जाय। उनकी शर्त मान ली गई। मगर ज्योंही दयाराम बैठने गये कि पीछे से किसी ने आसन खिसका दिया। दयाराम आग-बबूला हो गये, गले की कंठी तोड़कर फेंक दी। महाराज उन्हें समझाने के लिये गये तो उन्हें चौक से ही निकाल दिया। ऐसा था उनका स्वाभिमानी तेवर।

---

१ देखिए रसिकवल्लभ की भूमिका पृ० ९३ (स० के० गो० शाह) (गु०)

२ गा नट नायक ललित श्री, सारंग पानि कहान।
  जाहि गोरिंकर भजें, जदपि रूप कल्यान ॥ द० स० २७६
  कृष्ण भजन बिन कम सब, तनद स्वष्ट फलदान।
  सफल, सफल सम सुघरता, जस मृदगो गतमान ॥ ३२७
  गुन सों सब को जीउ हैं, अगुने मृतक समान।
  बिना जियारी जन्त्र ज्यों, फीको रुउ न कान ॥ द० स० ८८३
३ तनक बुराई तुरत फल, जामें अति परिनाम।
  कठ कटे कटु ना कहे, सो न सयानो काम ॥ द० स० ४५१।

भड़ौच शहर की बात है। तिलकायत गोस्वामी दीक्षित जी महाराज पधारे थे। वैष्णवों ने उन्हें प्रथम तिलक किया। दयाराम वैष्णव मण्डली से यह कहकर उठ चले "कि मेरा प्रथम तिलक होना चाहिए, मैं दीक्षित जी से श्रेष्ठ हूँ दीक्षित जी तो केवल वैष्णव है, मैं तो वैष्णव हूँ, विद्वान् हूँ, कवि हूँ।" किसी को फुसलाने की उनकी आदत नहीं थी। स्पष्ट वक्ता थे। अपनी रचना अपनी मौज के लिए करते थे या अपने आराध्य गोपीश की प्रीति सम्पादन करने के लिए, किसी भूप से ताहफा लेने के लिए नहीं।[1]

भजन-कीर्तन दयाराम का नित्य-नियम था। डभोई में रहते-रहते उनके आस-पास उनके अनेक प्रशसक और शिष्य एकत्र होने लगे। ज्यो ज्यो उनकी ख्याति बढ़ती गई। त्यो त्यो उनके शिष्यो की संख्या में वृद्धि होती गई। चांगोद, डभोई, डाकोर, बडौदा, भड़ौच और उमरेठ आदि स्थानो से हजारो की तादाद में नर-नारी उनके भक्त-मण्डल मे प्रवेश पाने लगे। कुछ उनकी कविता पर मुग्ध होकर आते थे तो कुछ उनकी संगीत कला पर न्योछावर थे और कुछ कृष्णभक्ति के प्रवाह में अवगाहन कर पवित्र होने आते थे। उनकी भक्त मण्डली मे श्री रणछोड भाई जोशी, गिरिजाशकर जोशी, रतनबाई, वसन्तराम, घेलाभाई अमीन और लल्लूभाई कायस्थ प्रमुख जन थे। रणछोड भाई और गिरिजाशकर पट्टशिष्य थे। ये दयाराम के रस पद और गीता को गाते थे। दयाराम शिष्य प्रिय थे। रणछोड भाई पर उनका पुत्रवत् स्नेह था। वसन्तराम के संगीत पर तो वे इतना मुग्ध थे कि वसीयतनामे में अपना तम्बूरा वसन्तराम के नाम लिखते गये।

दयाराम बडे भावुक थे। एक बार पेटलाद नगर की एक कुलीन महिला दयाराम की रचनाओं से प्रभावित होकर डभोई में कवि को मिलने आई। कवि उस समय वर्षासन लेने के लिए बडौदा जा रहे थे। परन्तु प्रशंसिका की भक्ति भावना से गद्गद होकर वर्षासन की चिन्ता छोड़कर उस महिला को संगीत गीत भजन सुनाते रहे।

दयाराम को धन की चिन्ता न रही। उन्होने सब कुछ कृष्ण पर छोड दिया था। एक दो बार उन्हे इस विषय में कुछ कड़वे अनुभव हुए और उन्होंने

१ पुरुषोत्तम गोपीश को, कृष्ण मनोहर रूप।
तव प्रीत्यर्थ सुग्रन्थ यह, नहिं रिझवन को भूप ॥

—स०, डॉ० अ० श० नागर द० स० छ० ७२८।

समर्पण कर लिया था कि वे वृत्तिका के लिए किसी के सामने हाथ नहीं फैलायेंगे।[1] गुजरात में उनके अनेक शिष्य थे जो उनकी भली-भाँति देखरेख रखते थे। अपनी थोड़ी बहुत जमीन थी जिसमें १५ रुपये की वार्षिक आय हो जाती थी। डभोई और बड़ोदा के कुछ व्यापारी-महाजनों ने मासिक वर्षासन का प्रबंध कर दिया था। कुछ आमदनी भजन कीर्तन और कथा-वार्ताओं के द्वारा हो जाती थी। जीवन निर्वाह के लिए पर्याप्त था। संचय के दयाराम पक्षपाती नहीं थे। जो आता था, दोनों हाथों से उसे बिखेर देते थे। एक बार उन्होंने 'आत्मश्राद्ध' करने की इच्छा व्यक्त की तो शिष्यों और भक्तों ने बड़े उत्साह से दो हजार से भी अधिक रुपये एकत्र किए। दयाराम का आत्मश्राद्ध बड़ी धूम धाम से सम्पन्न हुआ। जो कुछ उनके पास था सब खर्च कर दिया। बाद को जो इकट्ठा हुआ उसे वसीयतनामे के द्वारा अपने शिष्यों और आश्रितों के बीच तकसीम कर मुस्कराते चले गये।

रतनबाई नाम की एक सुनारिन बाल-विधवा दयाराम के जीवन में तब आई जब दयाराम चालीस वर्ष की आयु पार कर गये थे। इस महिला को लेकर दयाराम के चरित्र पर अनेक आक्षेप हुए हैं। रतनबाई विधवा थी, दुखी थी। कवि के यहाँ उसने आसरा पाया और अनन्य निष्ठा के साथ कवि की सेवा शुश्रूषा की। कवि पर उसकी अनन्य प्रीति थी। कवि की मृत्यु के बाद भी रतनबाई ने उनकी मूर्ति का दर्शन करने के पश्चात् अन्न-जल ग्रहण करने का संकल्प दृढ़ता से निभाया। कवि का भी उस पर गाढ़ अनुराग था। एक बार कवि के रोष के कारण रतनबाई उन्हें छोड़कर चली गई थी तो कवि ने खाना पीना छोड़ दिया था। कवि के एक मित्र के समझाने पर रतनबाई ने कवि के यहाँ रहना स्वीकारा। २७ वर्ष तक सतत रतनबाई कवि के साथ रही। कवि अपरिणित थे। इसलिए सामाजिक दृष्टि से अनेक भ्रान्तियों को इस प्रेमी-जोड़ी ने जन्म दिया।[2] परन्तु ये दोनों दिव्य-जीव थे। पूर्वजन्म के ऋणानुबंध के रूप में एकत्र हुए थे। वसीयतनामे के अनुसार दयाराम ने रतनबाई को केवल पच्चीस रुपये देने को कहा है क्योंकि रतनबाई ने उनका 'काम काज' और चाकरी की थी। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि दयाराम और रतनबाई का सम्बन्ध पारस्परिक भक्ति और

१ बृ० का० दोहन भाग ५, पृ० २८।
२ देखिए दयाराम ले० डॉ० प्रवीण दरजी, पृ० १६।

स्नेह के कारण बंधा था। कुछ विरोधियो के द्वारा ही इस सम्बन्ध को अवाछित मोड दिया गया प्रतीत होता है।[1]

दयाराम पुष्टिमार्गीय वैष्णव थे। उनका सारा जीवन कृष्णमय था। कृष्ण-कसौटी पर ही वे ससार की परीक्षा करते थे। कृष्ण प्रेम मे वे आकण्ठ निमग्न थे। तैरें तो कृष्ण की कृपा और डूबें तो कृष्ण की ही कृपा। गोपीभाव से उन्होने कृष्ण का वरण किया था। व कृष्ण की गोपी थ, दूसरा उनका कोई दूसरा स्वामी नही था।[2] कृष्ण पर उनकी अनन्य निष्ठा थी। एक बार बडौदा के एक प्रसिद्ध धनाढय गोपालराव महाराव ने दयाराम को गणपति की स्तुति प्रार्थना में कुछ लिखने का अनुरोध किया। कवि ने उत्तर दिया कि वे कृष्ण का वरण कर चुके हैं, अब दूसरे की प्रार्थना या स्तुति नही कर सकते हैं। दयाराम चाहते तो गणपति की प्रशसा म स्तुति प्रार्थना लिखकर धन का उपार्जन कर सकते थे। लेकिन कृष्ण उनके प्रिय थे। दूसरे की उन्हें परवाह नही थी। उन्हे कृष्ण का साक्षात्कार हुआ। दयाराम के इस दर्वी जीवन के साथ अनेक चमत्कारी प्रसग जुडे हुए हैं। कहते हैं कि जब दयाराम अपनी प्रथम तीर्थयात्रा के दौरान काशी की ओर निकले तो काशी १५-२० मील दूर रह गयी थी। दयाराम दौडे परन्तु तब तक मन्दिर के दरवाजे बन्द हो गए थे। दयाराम निराश थे। एकाएक एक अज्ञात पुरुष ने उनके सामने आ कर कहा 'उठो दरवाजा खुला है।' दयाराम स्नान करके काशी विश्वनाथ का दर्शन करते हैं और प्रशसा मे एक लावणी सुनाते हैं। कहते हैं, श्रीनाथजी ने दयाराम को स्वय ब्रजभूमि म ले जाकर अपनी आभ्यतरिक लीलाओं के पावन दर्शन कराये थे। नरसी मेहता की हुण्डी की तरह दयाराम के कर्ज को श्रीकृष्ण ने चुकाया था। रामेश्वर धाम मे कृष्ण बडे कि शिव ? इस मुद्दे पर उग्र विवाद हो गया तो शिव पन्थी साधु ने तर्क का सहारा छोडकर गुस्से म आकर दयाराम के सिर पर प्रहार करने के इरादे से डडा उठाया तो श्रीकृष्ण की कृपा से प्रहारकर्ता के हाथ के साथ उठा हुआ दड

---

१ भक्त कवि दयाराम भाई के० का० शास्त्री दयाराम शताब्दी स्मृति ग्रन्थ, पृ० ४६

२ एक वर्यो गोपीजन वल्लभ, नहीं स्वामी बीजो।
नहीं स्वामी बीजो रे, म्हारे नहीं बीनो रे।।

ऊपर ही ऊपर रह गया। ऐसे कितने ही चमत्कारी प्रसंग दयाराम के जीवन के साथ जुड़कर अनेक कथाओं के उत्स बन गए हैं।

दयाराम का जीवन एक समृद्ध जीवन था। मध्यकालीन व्यक्तित्व की सभी विशेषताओं से व जुड़े हुए थे। उनका अध्ययन विस्तृत था। वेद, उपनिषद् और पुराणों से लेकर दर्शन, व्याकरण और काव्यशास्त्र तक उनकी गहरी पैठ थी। ज्योतिष और गणित के जानकार थे। पशु-पक्षी और वनस्पति जगत् की अनेक विशेषताओं और विविधताओं से परिचित थे। जागतिक व्यापार के सूक्ष्म द्रष्टा थे। सामाजिक परम्परा और रूढ़ता में जहां कहीं छिद्र या कमी दिखाई देती थी वहां अपनी राय प्रकट करने में उन्होंने कोई संकोच नहीं किया है। जो जैसा है उसको वैसा ही प्रस्तुत किया है। स्पष्ट वक्ता थे। रसिकजन थे।

---

२ | दयाराम की बहुज्ञता

कवि भारती का अपना एक अनोखा संसार होता है। ब्रह्मा एक संसार की सृष्टि करता है, कवि एक दूसरे संसार की साधना में तल्लीन रहता है। ब्रह्मा सर्वज्ञ होता है। नाना नामरूपमयी सृष्टि की सफलता का रहस्य उसकी इस सर्वज्ञता पर आधृत रहता है। कवि की सृष्टि की सफलता के लिए निपुणता आवश्यक होती है। निपुणता का आधार लोक, शास्त्र की जानकारी होती है। कवि को निपुणता प्राप्त करनी होती है—सर्वत्र दिक्का हि कविवाचः।[1]

भारतीय काव्य शास्त्र में महामुनि भरत ने कवि के भार की विराटता की ओर निर्देश करते हुए कहा है—

न तत् ज्ञानं, न तद् शिल्पं न सा विद्या न सा कला।
न स योगो न तत् कार्यं, नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते॥[2]

अपनी काव्य-रचना के लिए कवि को अनेक श्रोतों का सहारा लेना पड़ता है। उसे परम्परा की पहचान रखनी पड़ती है, वर्तमान का अवेक्षण करना पड़ता है और भविष्य की कल्पना का चित्र उपस्थित करना होता है। उसे संसार चक्र के भीतर एक समानान्तर संसार प्रस्तुत करना होता है। इसलिए उसकी सज्जता के लिए आचार्य भामह का मत है—

शब्दश्छन्दोऽभिधानार्थाः इतिहासाश्रया कथाः।
लोको युक्तिः कलाश्चेति मन्तव्या काव्यगैर्ह्यमी॥
शब्दाभिधेये विज्ञाय कृत्वा तद्विदुपासनाम्।
विलोक्य अन्यनिबन्धांश्च कार्यः काव्यक्रियादरः॥[3]

---

१ काव्य मीमांसा राजशेखर ५।
२ नाट्यशास्त्र १/११७।
३ काव्यालंकार सूत्र० ५/८।

कवि को काव्य-रचना के लिये व्याकरण, छन्द, कोश, अर्थ, इतिहास-आश्रित कथाएँ लोक-व्यवहार, तर्कशास्त्र और कलाओं का मनन करना चाहिए। शब्द और अर्थ का सम्यग् ज्ञान प्राप्त करके काव्य जानने वाला की उपासना और अन्य कवियों की रचनाओं का अध्ययन करना चाहिए। तत्पश्चात् ही काव्य-रचना में प्रवृत्त होना चाहिए।

इस प्रकार काव्य प्रणयन के लिए कवि को लोक और शास्त्र का विस्तृत ज्ञान होना अनिवार्य माना गया है। जिस कवि की लोक और शास्त्र में जितनी गहरी पैठ होगी उसका काव्य उतना ही पुष्ट और सफल होगा। लोकशास्त्र की निपुणता ही उसकी वाणी को उत्कृष्टता प्रदान करती है। एक ही अर्थ में विशेष अर्थ का सन्निवेश भी इसी निपुणता पर आधार रखता है। निपुणता से कवि की वाणी पल्लवित होती है।

अतथास्थितानपि तथास्थितानिव हृदये या निवेशयति।
अर्थ विशेषान् सा जयति विकट कविगोचरावाणी॥[1]

दयाराम ने निपुणता हस्तगत की थी। दूर-दूर के लम्बे-लम्बे प्रवासों के द्वारा, लोगों के साथ रहकर उनके व्यवहारों को देखकर बड़े से बड़े राजा-महाराजा, महन्त-श्रीमन्तों के साथ व रहे थे साधारण से साधारण जनों के साथ उनका सम्पर्क था। विभिन्न तीर्थों के पंडित-पुरोहितों को देख आये थे। विद्वानों से उन्होंने जानकारी प्राप्त की, पूर्व सूरियों की रचना का अध्ययन किया था और समाज के क्रिया-कलापों पर वेधक दृष्टि रखी थी। इसलिए उनकी सतसई में उनकी बहुज्ञता और निपुणता का विराट दर्शन होता है। उनका शास्त्र ज्ञान प्रखर था। अपने मत शुद्धाद्वैत और पुष्टि मार्गीय भक्ति का उन्होंने अनेक तर्क देकर प्रतिपादन किया है। मीमांसकों का वे उग्र विरोध करते हैं। उनके निरीश्वरवाद पर व एक तीखी चपत लगाते हैं। व कहते हैं— "ईश्वर है। अगर रात के राजा घू घू को सूर्य के अस्तित्व का भान नहीं होता तो सूर्य का क्या दोष।"[2] कर्म का फल मिलता है यह बात भी बिलकुल गलत है। देखो अजामिल को। उसे कर्म फल भोगे बिना मोक्ष मिल गया।

---

१ ध्वन्यालोक आनन्दवर्द्धन—चौखम्बा पृ० ४१३।

२ कहैं मिमांसक इस मत, मुनि मन चित्त धरि साँच।
घू घू घने न जानही, सहै क्यों सूर हैं साँच॥ द० स० ६६०

३ करनी करो मुभोगनी, कहे मीमांसो धान।
अजामेल भुगएँ बिना क्यों पायो निरवान॥ वही ६३०।

योग, ज्ञान और वैराग्य ये तीनो ही नर प्रकृति के हैं इसलिए माया के आकर्षण मे फँस जाते हैं । भक्ति नारी है इसलिए माया उसे लुभा नही सकती है ।[1] ज्ञानी को मोक्ष अत्यन्त दुर्लभ है, भक्त का भक्ति के प्रताप से सहज मे भगवान् प्राप्त हो जाता है । मोक्ष तो घुणाक्षर न्याय है ।

श्रुति मे परब्रह्मतत्व को 'नेति नेति' कहकर पुकारा है । दयाराम भी अपने शुद्धाद्वैत के अनुसार इसका समर्थन करते हैं—

श्रुति नेती मन-गो-अगम, निगुन अक्षरातीत ।
सो श्री गोपीनाथ को अभिवादन अगनीत ॥[2]

वेदो मे ईश्वर को एक मात्र कर्ता हर्ता कहा गया है । जो कुछ करता है वही करता है—उसकी लीला से सब कुछ अस्तित्व मे आता है, तिरोहित होता है—यतो इमानि भूतानि जायते, येन जातानि जीवन्ति, यत्प्रयन्त्यभि सविशन्ति ।

दयाराम भी इसी का समर्थन करते हैं—

श्रीहरि बिन कछु करि हरी, कहूँ सकैं नहि कोय ।
कहि श्रुति में धृति का करी, हरि को गती न होय ॥

× × × ×

जो न रूप जगधाम, क्यों सभव कर तन्यता ।
एकोऽहं बहुस्याम, श्रुति निषेध करत न बनें ॥[3]

पुष्टिमार्ग और शुद्धाद्वैत के सभी प्रामाणिक ग्रन्थो का उनका अध्ययन विशाल था । उसकी सभी परम्पराओ से वे परिचित थे । पुष्टिमार्ग प्रतिपादित भक्ति का सबल तर्कों से मण्डन करते थे । शंकर मत मे जीव को ही ब्रह्म माना गया है । परन्तु माया के आवरण के कारण वह अपने स्वरूप को पहचानने में असमर्थ रहता है । शुद्धाद्वैत मे जीव और ब्रह्म अलग-अलग हैं । एक अंग है और दूसरा अंगी, दोनो एक नहो हैं एक होने की सभावना भी नही है—

भयो ब्रह्म तें जीव फिरि, ब्रह्म होय कहि मुग्ध ।
ज्यों दधि पयसों होत, सो बहुरि बनें नहि दुग्ध ॥[4]

---

१ पोरु प्रधान न भक्त दें, स्वामिनों भक्ती होय ।
योग ग्यांन वैराग्य नर दबे तदाश्रित तोय ॥ ३१३

२ द० स० दो० ३ ।

३ द० स० दो० २१ और ३३३ । ४ वही, छ द सं० ३३५ ।

शुद्धाद्वैतवादियों का परब्रह्म माया से अभिन्न है। वह निर्गुण और सगुण दोनों है। इसमें सर्ववाद स्वीकार करके सब धर्मों का उसमें आश्रय माना है दयाराम इसी बात को स्वीकार करते हुए कहते हैं कि कोई कुछ कहता है और कोई कुछ, परन्तु जिसमें सब धर्मों का समन्वय हो वही परमेश्वर परब्रह्म है—

कछु कहे को कछु कहें, भिन्न सकल के देस।
सो समन्वय जाहि को, वेहि पुरन परमेस ॥[1]

श्री वल्लभाचार्य ने अपने अणु भाष्य में कहा है—कि "ब्रह्म अनन्त रूप होकर भी एक है। उसमें सब धर्म निहित हैं। विरोधी मालूम होने वाली धर्म-स्थितियाँ उसमें समाप्य और नित्य हैं। इसलिए वह सर्व-शक्तिमान है, पूर्ण परमेश्वर है।"[2]

दयाराम भारत के सभी दार्शनिक मतों से परिचित थे और शुद्धाद्वैत के पूरे पंडित और दृढ़ पक्षधर थे।

पुराणों का ज्ञान मध्यकालीन कवि की एक अनिवार्यता थी। दयाराम ने पुराणों का गहरा अध्ययन किया प्रतीत होता है। पुराणों के आख्यानों पर उनकी अनेक गुजराती कृतियाँ निर्मित हुई हैं।[3] भागवत-पुराण उनका प्रिय पुराण रहा है। उसकी कथाएं और अन्तर्कथाओं में उनका अधिक गाढ़ परिचय रहा है। इन कथाओं का प्रयोग प्रायः भक्ति और भक्त की श्रेष्ठता प्रतिपादन करने के लिए किया गया है। शबरी और ध्रुव भगवान् में सर्वात्मना समर्पण और अखण्ड विश्वास के प्रतीक हैं अन्यथा ज्ञानी मुनि और कठोर तपस्वी इनकी आराधना क्यों करते ? देखिए—

धाता के सुनु सतरूपी, ध्रुव छत्री के बाल।
देवें याहि परिक्रमा, भक्ति बड़ गोपाल ॥
मुनि ज्ञानी सुरि तपस्वी, बंदे जग सब पाय।
सो सबरी हरि भक्त के, अच्छोउ ओधाय ॥[4]

राजा खट्वांग और जड़भरत, राजा भगीरथ और गंगा, कृष्ण और व्याध के साथ जुड़ी हुई कथाओं का समुचित उपयोग अपने मत की पुष्टि में

---

१ द० स० छं० स ३३४।

२ ब्र० सू० अणुभाष्य।

३ देखिए—अजामेला आख्यान, रुक्मिणी विवाह आदि।

४ द० स० छन्द स० ३०८, ३०९।

दयाराम ने किया है। दयाराम ने अपनी पौराणिक ज्ञान से भक्ति और नीति के विधानो को परि-पुष्ट किया है। ऋषि दुर्वासा बडे ज्ञानी थे, बडे तपस्वी थे, ब्राह्मण वश मे उत्पन्न थे, बडे स्वाभिमानी और क्रोधी थे, परन्तु उन्हें भक्त राजा अम्बरीष के चरणो पर झुकना पडा, कृत्या से उन्हे कोई बचाने वाला न मिला—

रुद्र अस अजबसमनि, दुर्वासा तपखानि।
सो नृप अखिल भक्त पद, नये क्रोधि बड मानि ॥[1]

ज्योतिष और वैद्यक का ज्ञान प्राय मध्यकालीन सभ्रान्त नागरिक के गुण माने जाते थ। मध्यकालीन अनेक कवियो न अपने ज्योतिष और वैद्यक ज्ञान का परिचय अपनी कृतियो म दिया ह। दयाराम ज्योतिष की बारीकियो को जानते थे। ज्योतिषी प्राय मूल जन्मपत्री का देखकर वर्षफल लिखते हैं। जन्म कुण्डली के ग्रहो की दशा के अनुसार ही वर्षफल या अब्दफल निकाला जाता है। वर्षफल मूल जन्मकुण्डली के अनुसार ही लिखा जाता ह। कृष्ण और विधाता की सापेक्षता का इसी आधार पर दयाराम निश्चित कर कहते हैं—

जनमपत्रि सब जगत की रचि राखी गोपाल।
ताके लें फिरि अब्दफल, लखत विधाता भाल ॥[2]

परब्रह्म श्रीकृष्ण के अनुसार ही विधाता जगत का वर्षफल बनाता है। ब्रह्मा भी श्रीकृष्ण के अधीन हैं। ज्योतिष की १२ राशियो, नवग्रहो, २७ नक्षत्रो का उपयोग दयाराम न केवल शाब्दिक क्रीडा के लिए किया है। राशि के अक्षरो को लेकर लम्बी-चौडी ऊहात्मक अभिव्यक्ति दयाराम के दोहो म हुई है—

वल्लभ सब ससार को, ता रासी की रास।
तारा सौ अरि अरि अरौ, अरिपति के हम दास ॥[3]

ज्योतिष का एक अग है शकुन शास्त्र। स्त्री की दाहिनी आँख का फडकना अशुभ माना जाता है और बाई बाहु का फटकाना शुभ माना जाता है। अभिसारिका सकेत स्थान पर पहुँच गई है लेकिन प्रियतम के पहुँचने पर विलम्ब हो रहा है, अभिसारिका की दाहिनी आँख फडक रही है अत

१ वही स० ३१०।
२ द० स० छन्द स० ५२६।
३ वही स० ६६४।

है। अब अन्या के शकुन शास्त्र कहता है नायक की आने की समावना नही यहा पहुँच गया होगा—उसकी बाँई बाँह फड़क रही होगी—

छाँहि चाहि तन छाँहि पिय, अत्र मलि आवें नाँहि।
फरकत मो अखि दाहिनी काहु कि बाँई बाँहि॥[1]

शकुन शास्त्र के अनुसार यदि कौआ घर की मडेरी पर बैठकर बोल रहा हो तो वह किसी के आगमन की सूचना होती है। सुबह नायिका के घर पर कौआ बोल रहा था। दोपहर मे पत्र आया। नायिका अपनी सखी को कहती है देख इस पत्र मे क्या लिखा है? सखी कहती है—'वही लिखा है जो शकुन सुबह कौए ने दिया था। बस प्रियतम के आगमन से नायिका के गात्र पुलकित हो गए कचुकी ढीली पडने लगी। शकुन शास्त्र का यह रसभरा प्रयोग कवि ने किया है।

कागद का गव राचिका, काग दए जो सोन।
सरकत सरकें कचुकी, परसन को विषपान॥

ज्योतिष के साथ अकगणित का सम्बन्ध है। अकगणित मे शून्य का बड़ा महत्त्व माना गया है। बिहारी ने शून्य से 'दशगुनी शोभा बढी' माना है। उनकी नायिका बेंदी लगाती है तो उसकी शोभा के अक मे दशगुनी वृद्धि हो जाती है।[2] दयाराम इसी बात को अपने ढग से कहते हैं। शून्य की कीमत तब होती है जब वह अक के साथ हो अन्यथा वह शून्य ही रहता है।[3] दयाराम ने अको की गुणवृद्धि का एक रोचक उदाहरण दिया है। सज्जन और दुर्जनो का स्नेह ९ और ८ के गुणनफल के योग की तरह होता है। दुर्जनो का स्नेह आठ के अक के गुणनफल के योग के समान घटता ही रहता है—जैसे ८ का दुगुना १६ हुआ और उसका (१+६ का) योग ७ हुआ, ८ का तिगुना २४ हुआ और उसका योग २+४=६ हुआ, ८ के चौगुने मे योग ३२ अर्थात् ३+२=५ ही रह जाता है। दुर्जनो की प्रीत निरन्तर घटती जाती है। सज्जनो की मैत्री ९ के गुणनफल के योग की तरह है। ९ का दुगुना १८ अर्थात् १+८=९ हुआ, ९ का तिगुना २७ अर्थात् २+७=९ हुआ, ९ का

१ वही स० १८६।
२ बिहारी रत्नाकर दो० ३२७।
कहत सबै बेंदी दियें, आंकु दस गुनो होतु।
तिय लिलार बेंदी दिय, अगिनितु बढतु उदोतु॥
३ दयाराम सतसई दो० ४७३।

चौगुना ३६ अथात् ३ + ६ = ९ हुआ। योग स्थिर है। सज्जनो का प्रेम भी स्थिर रहता है। दयाराम ने गाणितिक विशेषता बताई है।

ज्योतिष मे रुचि रखते हुए भी दयाराम न ग्रहो के बलाबल पर अधिक विश्वास नही दिखाया ह। ग्रहो के कारण सुख दु ख का निर्माण होता है। यह बात सही नही है। रावण ने नवग्रहो को बाध दिया था, नवग्रह उसका कुछ नही कर सके—

जो कहि ग्रह को सुख दुखद मे कहूँ वाहि अयान।
रावन बांधे तोन कू बिन दुख दायक कांन ॥[1]

आयुर्वेद मे त्रिदोष का कठिन रोग माना गया है। वात, पित्त और कफ के सन्तुलन मे जहाँ गडबडी हुई शरीर रोगो का आलय बन जाता है। रोगी के बचने की आशा क्षीण हो जाती है। दयाराम की नायिका भी विरह के त्रिदोषो से ग्रस्त है, उसे बचन की आशा कम है—

हिय दहन हरि रूप सुधि, विरह ताप बच-सुर।
अब जीवन तज आस अलि, भई 'त्रिदोष रुज पूर ॥[2]

ज्वर-ग्रस्त को घी नही दिया जाता है परन्तु ज्वराकुश दवा के साथ घी का अनुपान दिया जाता है। वज्य घी यहाँ गुणकारी बन जाता है—

मर विह्वार बसन अभे, सो दृस्तित धीरंग।
जुरि घृत गर वहि अिमि अमी होइ जुरावकुस सग ॥[3]

आयुर्वेद का एक सिद्धान्त ह कि अनुपान भेद स दवा क गुणधर्म म भेद हो जाता है। दयाराम इसी बात को रखाकित करते हैं—

सोखद सो सोखद भय, यह दिन बिन न प्रभाव।
और और अनुपान तें, भेषज ज्यों हिय भाव ॥[4]

प्रियतम की उपस्थिति के समय जो सुखद लगने थे व ही उनकी अनुपस्थिति मे शोषण करन वाले बन गए। समय की बलिहारी है, हृदय म भाव समय के अनुसार बदलते रहते हैं। दवा भी अनुपान के प्रभाव से अपना गुणधर्म बदलती है।

---

१ द० स० दोहा ५८७।
२ वही २३३।
३ दयाराम सतसई छन्द ३९०।
४ द० स० छन्द ४०१।

आयुर्वेद में पारे को सिद्ध करने की अनेक विधियाँ हैं। पारे की चंचलता को गन्धक के संयोग से स्थिर किया जाता है। आयुर्वेद के इसी तथ्य को लेकर दयाराम मन की चंचलता को स्थिर करने के लिए प्रेम का संयोग अनिवार्य मानते हैं—

मन रस रस-गंधक मिल्यों, चपल अचलता पाय।
और जतन बहु युक्ति तें, ज्यों क्यु गह्यों न जाय ॥[1]

वस्तुवृन्ददीपिका में दयाराम ने अपने विराट कोश-ज्ञान का परिचय दिया है। परन्तु अपनी 'सतसई' में पशु पक्षी और वनस्पति जीवन का बड़ा मार्मिक और आकर्षक उपयोग किया है।

रेशम का कीट रेशम के तारों से ऐसा जाल बना देता है कि अन्त में उसी में अकुलाकर प्राण त्याग देता है। मनुष्य की दशा भी यही है अपने ही प्रपंच में वह स्वयं फंस जाता है—

ग्रह-वागुर रचि थकि गयों, नूर न अब निरुवाय।
जैसे काट कुसोट कों, आप मुरझि मर जाय ॥[2]

खारे पानी से भरे हुए समुद्र के बीच में रहने वाले पक्षी शक्करखोर को ईश्वर शक्कर देते हैं। समुद्र में एक ऐसी घास होती है जिसमें शर्करा प्राप्त होती है। यह पक्षी उसी घास को खाता है। ईश्वर खारे समुद्र के बीच में भी शक्करखोर को उसका खाद्य देता है फिर मनुष्य को क्यों चिन्ता करनी चाहिए?

चिंता तू चित क्यों करें, विश्वम्भर व्रजपाल।
सक्कर सक्करखोर को, दधि मधि देत दयाल ॥[3]

केतकी भ्रमर को कांटों से बेंध देती है और कमल उसे बन्दी बना लेता है तो भी भ्रमर की प्रीति उनके प्रति कम नहीं होती है। प्रियतम दुखदायक होने पर भी सुखकारी प्रतीत होता है—

तो हूँ सुख करहीं लगे, जो प्रीतम दुखदाय।
ज्यों केकी को कंद अरु, कंज केतकि षटपाय ॥[4]

---

१ वही स० ६१।
२ दयाराम सतसई स० ४३३।
३ वही स० ३४८।
४ वही स० ६४६।

कालगति रुकती नहीं है। काल चलता रहता है। प्रत्येक सुबह काल परिवर्तन की सूचना देती है। इसी बात को मुर्गा बाँग देकर और गुलाब चटक कर कहता है—'काल का आतंक सिर पर है। फिर क्यों हरिस्मरण नहीं करता है—

अरुनसीख जनु टेरि कहि, चुटकी बजइ गुलाब।
अरि अतंक सिर तहूँ न क्यों, हरि जप करे सताब ॥[1]

गर्मी में अन्य पेड़ पौधों को मुरझाया और कष्ट में देखकर आक-जवासा खुश होकर प्रफुल्लित हो जाते हैं। दुष्ट भी परकष्ट में पुष्ट रहते हैं—

पुष्ट रहे पर कष्ट में, ये ही दुष्ट सुभाय।
आक जवासा ग्रीषम में, हरे और [illegible] पाय ॥[2]

पशु पक्षी और वनस्पति जगत से दयाराम अच्छी तरह से परिचित थे। उनकी विशेषताओं को जानते हैं। इनमें कुछ सामान्य हैं जिन्हें सब जानते हैं। परन्तु कुछ ऐसे हैं जिनकी जानकारी सामान्य जन को नहीं रहती है—जैसे शक्करखोर, निपटा, गुलम्हेरी आदि। केवल नाम परिगणन ही दयाराम ने नहीं किया है अपितु उनकी विशेषताओं का भी उन्होंने अध्ययन किया है।

काव्यशास्त्र की परम्परा का दयाराम को अच्छा ज्ञान था। छन्दशास्त्र पर तो उनकी अपनी 'पिंगलसार' नामक स्वतन्त्र पुस्तक है। एक ओर वे कृष्ण को ही काव्य का सर्वाधिक श्रेष्ठ विषय मानते हैं तो दूसरी ओर वे कठोर काव्य के हिमायती हैं। काव्य की परिभाषा में वे एक महत्त्वपूर्ण बात कह देते हैं कि काव्य वही अच्छा है जिसमें कवि का हृदय बोलता हो। काव्य कवि का वह प्रतिनिधि है जिसके द्वारा वह प्रत्यक्षत जाना जा सकता है—

काव्य देखि हुई करामलक, कवि के हिय की बात।
मूल रूप प्रतिनिधी तें, हू-ब [illegible] आँपों बात ॥[3]

दयाराम कल्पना में विहरणशील कवि नहीं थे। लोकानुभव की कठोर भूमि पर खड़े सत्य के अनुभवी थे। लोगों की रीति-नीति, आचार-व्यवहार, भय पीड़ा, राग ईर्ष्या का सूक्ष्म निरीक्षण कर वे काव्यक्षेत्र में आये थे। कबीर की तरह दयाराम ने भी 'देखी' कही है। देखा जाता है कि कमरत रहने पर

---

१ दयाराम सतसई छं० सं० ४४५।
२ वही छं० सं० ४७०।
३ दयाराम सतसई

भी सिद्धि नहीं प्राप्त होती है, सुख नहीं मिलता है। बैल दिनभर कोल्हू का चक्कर काटता रहता है उसे आराम कहाँ ? उधर दक्षिण साँड महाराज फुरसत मे रहते हैं—

हरि आश्रय बाँनो सुबढ़, केवल कति हि न सत्य।
बस दुखी बलीवद सुख, जिमि देखहु [illegible] कृत्य ॥[१]

प्राय कलिकाल के राजा अपने निर्णय म न्याय और धर्म की उपमा करते हैं। केवल तलवार पर ही श्रद्धा उनकी रहती है—

दुस्तर या कलिकाल मे, धर्म न्याय नहि दाव।
निर्णै ठने नृपादिक, जो जोरावर भाव ॥[२]

राजसुख विष मोदक के समान है। बाहर से सुन्दर परिणामत दु ख-दायी होता है। राजा मन्त्रियो पर आधार रखता है यदि मन्त्री धोखा देते हैं तो राजा हार जाता है। इसी म मनुष्य रूपी राजा मनमन्त्री के इशारो पर चलता है इसलिये आदमी हारता रहता है—

मन अनीत उहटो चल्यौं, सुमिहीं [illegible] मम राव।
दगा कियौं परधान ज्यौं, नृप जीतन नहि दाव ॥

दयाराम के जमाने मे सती प्रथा का महत्त्व था। उस श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता था। दयाराम इसी अनुभूति से अभिभूत होकर मा के प्रेम से भी बढकर स्वकीया के प्रेम को मानते हैं—

अवादिक को आहि मैं, अबला बोहव हुव।
वे रोवें ऐ तन तजें, पति प्रयान लखि सद्य ॥[४]

दयाराम की सतीप्रथा पर इतनी आस्था थी कि स्वकीया के लक्षण म उन्होने इसका समावेश कर दिया—

बरावृद्धि, सोभा सहल करें सह गमन सोइ।
स्वकीया की यह तीन कृति, परकीय कबू न होइ ॥[५]

---

१ दयाराम सतसई छन्द ३४६।
२ वही छद ६१८।
३ वही छन्द ३६।
४ वही छन्द ६४०।
५ वही छन्द १६६।

दयाराम अपने जमाने की आनन्द-प्रमोद की प्रवृत्तियों के अच्छे जानकार थे। संगीत की बात प्रथम कही जा चुकी है। संगीत एक अभिजात्य-वर्ग तक सीमित था। सामान्य लोगों के लिए शतरंज, चौपड़ और गंजीफा मनोरंजन के माध्यम थे। शतरंज के मोहरों में पदाति आगे बढ़ने के लिए सीधे चलते हैं। परन्तु जब मार करनी होती है तो उनकी चाल टेढ़ी हो जाती है। प्यारे के नयनों की गति के साथ शतरंज के प्याद की तुलना करते हुए दयाराम कहते हैं—

सहज गती सूधी चलें, तिरछे पर जिय लेंन।
मे बुध्बल के पदाती प्यारे तुम्हारे नैन॥[1]

दयाराम चौपड़ की खूबियों को भी जानते थे। चौपड़ में दूसरे को हराने के लिए अपनी पक्की गोटी कच्ची बनानी पड़ती है। इसमें कभी कभी हराने वाला कठिनाई में पड़ जाता है।

अति हठकरि जो पर बुरौं करें न लहि सुख सोइ।
आई निजके सार हति स्वपकि कच्ची होई॥[2]

सामान्य जन-जीवन का उनका निरीक्षण सूक्ष्म था। चश्मा-दूरबीन से लेकर मूसा-तराजू तक की करामातों का उन्हें ख्याल था। सामान्य मनुष्य ही नहीं बड़े से बड़े भी पेट के गुलाम होते हैं। पेट की लाचारी के सामने सभी नत मस्तक हो जाते हैं, भाले-बरछा की मार के सामने जो नहीं झुकते हैं वे करछी की मार के सामने आत्म-समर्पण कर देते हैं। भीष्म सदृश भद्र पुरुष भी इससे नहीं बच सके—

नाथ उदर नाहक दियो, बस कर पाय श्रुति साक।
एक याहि सभी जात धर्म, तेज बल नाक॥[3]
जो न बरछि तरछी डरें, मरें सु करछी मार।
बैठों बड़ भड भीसम सें, कौरो किय बस आहार॥

यह रोज का अनुभव है कि रोटी और गडेरी एक साथ नहीं खाया जा सकती हैं। क्योंकि एक को चबाकर निगलना होता है दूसरी को चबाकर

---

१ दयाराम सतसई छन्द सं० २६२।
२ वही छन्द सं० ३६६।
३ वही छन्द सं० ५१४, ६६३।

बाहर फेरना होता है। इसी सामान्य तथ्य का निरूपण करते हुए दयाराम कहते हैं—

प्रीति जुरि प्रकृति न मिलि, वह दुहु पख दुख पाय।
रोटी गडेरी चबी, क्यों डारे क्यों खाय॥[1]

दयाराम की जानकारी का क्षेत्र बहुत विशाल है। शास्त्रों से लेकर लोक के दैनंदिन व्यवहार तक उनकी सूक्ष्म अवलोकन शक्ति की पहुँच दिखाई देती है। शायद उनका यायावरीय जीवन उनकी निपुणता का एक प्रमुख स्रोत रहा हो। उनकी बहुश्रुतता और बहुज्ञता के कारण ही उनका यह दावा सही है कि 'सतसई' लोक और शास्त्र सम्मत ग्रन्थ है—

ज्ञान भक्ति सुविवेक युत, प्रेमादिक प्रस्ताव।
पूर्व ग्रन्थ सम्मत ललित, नागरता हरि काव॥[2]

---

१ द० स० स० ६४२।
२ वही सं० ७२६।

३ || दयाराम की हिन्दी रचनाएँ

दयाराम अपने समय के अत्यन्त बहुश्रुत और बहुविद् कवि रहे हैं। अनेक भाषाओं में उनकी रचनाएँ उपलब्ध होती हैं। गुजराती उनकी मातृभाषा थी। उसमें गुण और मात्रा की दृष्टि से उनकी उतनी ही मूल्यवान् रचनाएँ उपलब्ध हुई हैं। इनके अतिरिक्त संस्कृत, मराठी, पंजाबी आदि भाषाओं में भी उन्होंने साहित्य सृजन किया है। दयाराम का एक ऐसा भी छप्पय उपलब्ध है जिसमें उनके भाषा ज्ञान का परिचय मिलता है—

गिरिधर मुज प्राण[1] तु हि सामलडा प्यारा।[2]
मादर पिदर बिरादर[3] दुश्मन सबय बिसारा॥[4]
माटा मुखी विनिपु[5] सामी तिकड़े तिक्ड़े इकबारा।[6]
जानो 'प्रिय की पैर[7]' मनोरथ पूर्या मारा॥[8]
हरि मको कोण वा प्रेम[9] व स्वमेव स्वामी निरन्तर।[10]
नन्द महेर को पुतवा कया[11] प्रभु थारी दासी मांको कांई डर॥[12]*

यह तो एक प्रमाणमात्र है। निःसंदेह पादविहारी दयाराम को बहुत सी भाषाओं का सामान्य ज्ञान रहा होगा। कहा जाता है कि उनकी तीन कृतियाँ मराठी में, कुछ पद मारवाड़ी और पंजाबी में भी मिलते हैं। परन्तु ग्रन्थ रचना की दृष्टि से गुजराती और हिन्दी में ही उनका प्रदान महत्त्वपूर्ण है।

सर्व प्रथम कवि नर्मद* ने दयाराम की ३७ हिन्दी रचनाओं का और ३८ गुजराती रचनाओं का उल्लेख किया है। गुजराती साहित्य के इतिहासकारों ने प्रायः हिन्दी की ४१ और गुजराती की ४८ रचनाओं के कर्ता के रूप में

---

* (१) कच्छी भाषा (२) पंजाबी (३) फारसी (४) उर्दू (५) तेलगु (६) तमिल (७) हिन्दी (८) गुजराती (९) मराठी (१०) संस्कृत (११) पूरबी (अवधी) (१२) मारवाड़ी। दे० दयाराम सं० भोगीलाल सांडेसरा पृ० ७।

* गुजराती के प्रसिद्ध लेखक और समाज सुधारक।

दयाराम को साहित्य-सर्जन का श्रेय दिया है। इन ग्रन्थस्थ रचनाओं के अतिरिक्त गुजराती में सात हजार, ब्रजी में बारह हजार, मराठी में दो सौ, पंजाबी में चौबीस, संस्कृत में पन्द्रह और उर्दू में पचहत्तर पद फुटकर रूप में उपलब्ध होते हैं।[1]

वास्तव में मातृभाषा के अतिरिक्त हिन्दी पर दयाराम का अनोखा प्यार था। गुण और मात्रा की दृष्टि से उनकी हिन्दी रचनाएं उत्कृष्ट हैं। अधिकांश रूप में इन रचनाओं की भाषा हिन्दी की उपभाषा ब्रजभाषा रही है। मध्यकाल में ब्रजभाषा समग्र उत्तर और पश्चिम भारत की मान्य साहित्यिक भाषा थी। यह भारतव्यापी भाषा थी। संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के पश्चात् सर्वजन-व्यवहार भाषा के रूप में भी ब्रज का उपयोग होता था। गुजरात के अनेक दयाराम-पूर्ववर्ती कवियों ने ब्रजभाषा में अपनी रचनाएं की हैं। इनमें केशवदास, भालण, अखा और शामल विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। दयाराम इसी परम्परा में आते हैं। ब्रजी के अतिरिक्त उर्दू में भी दयाराम ने फुटकल रससिक्त रचनाएं की हैं। हिन्दी के इस रूप पर भी उनका अच्छा अधिकार था—

अल्लाह को मिला चाहे तो मैंपे को बिसार जा।
अगर इश्क किया चाहे तो, तू शिर को बिसार जा।

दयाराम की कुल ४८ हिन्दी रचनाएं ग्रन्थस्थ मिलती हैं जिनमें २६ प्रकाशित है और २२ अप्रकाशित अवस्था में हैं—

(१) प्रकाशित रचनाएं—	संकलन
१—अक्रूर चरित्र चन्द्रिका	दयाराम कृत काव्य संग्रह दयाराम कृत काव्य मणिमाला १-६ भाग
२—अनुभव मंजरी	सम्पादक जीवनलाल जोशी
३—कौतुक रत्नावली	दयारामकृत काव्य मणिमाला—६
४—क्लेश कुठार	,, ,, ,, १
५—नाम प्रभाव बत्तीसी	,, ,, ,, ५
६—पिंगलसार	,, ,, ,, ६
७—पुष्टिपथ रहस्य	प्राचीन काव्यमाला २ द० का० म० मा० २
८—पुष्टिपथ सारमणिदास	द० का० म० मा० ४
९—पुष्टि भक्त रूपमालिका	,, ५

१ बृहद् काव्य दोहन भाग—५ पृ० ४७।

१०—भागवत अनुक्रमणिका १८३२ प्राचीन काव्यमाला ११, द० नवनीत
*११—भक्ति विधान द० का० म० भा० ५
१२—मूर्खलक्षणावली प्र० का० मा० १३
१३—रसिक रंजन दयाराम काव्यसुधा
१४—वस्तुवृन्ददीपिका १८५४ दयाराम काव्य संग्रह
१५—विज्ञप्ति विलास द० का० म० भा० ५
१६—वृन्दावन विलास " ६ द० का० सुधा
१७—श्रीकृष्ण अन्य चन्द्रिका दयाराम काव्य सुधा
*१८—श्रीकृष्ण नामामृत धारा (संस्कृत पद) द० का० म० भा० ६
१९—श्रीकृष्ण नामामृतध्वनि " ६
२०—श्रीकृष्ण नामचाह्रस्य मजरी " ६
२१—श्रीकृष्ण स्तवनामृत " ५
२२—सतसैया १८१२ द० का० म० भा० ५
स्वतंत्र डॉ० अम्बाशंकर नागर
२३—सम्प्रदाय सार द० का० म० भा० ३
२४—सिद्धान्तसार " ६
२५—हरिदास मणिमाला " ६
२६—हरिस्वप्न सत्यता अनुमंजरी के साथ

(२) अप्रकाशित कृतियाँ—

१—अनन्य चन्द्रिका
२—ईश्वर प्रतिपादक
३—पुरुषोत्तम पूर्वार्द्ध बहुतिम्ब उत्तरार्द्ध
४—चातुर चतुर विलास
५—चिन्तामणि
६—दशमस्कन्धानुक्रमणिका
७—प्रस्ताव चन्द्रिका
८—प्रास्ताविक पीयूष

---

* के० का० शास्त्री के अनुसार संदिग्ध रचना है—देखिए भक्त कवि दयाराम मे नामे चढेल कृतिओ ले० "दया० शता० स्मृति—पृ० १०२।
* दयाराम एक अध्ययन (गु०) के आधार पर ले० रमाप्रसाद दवे पृ० २८९।

२ श्रीकृष्ण अकल चन्द्रिका—इसमें 'दुवैया' छन्द के माध्यम से भगवान् के अकलित चरितों का वर्णन किया गया है। भगवान् के अनेक चरित हैं, जो आपस में विरोधी भी हैं। इसलिए इनको जानना कठिन है। भगवान् के विरुद्ध धर्माश्रयित्व के अनेक दृष्टान्त दिए गए हैं।

३ सिद्धान्त सार—इसमें कुल ४१ पद हैं। इसमें भी 'शुद्धाद्वैत' के सिद्धान्तों को व्याख्यायित करने का प्रयत्न किया गया है।

४ श्रीकृष्ण स्तवनामृत—१७६ पदों का यह ग्रन्थ है। इसमें कृष्ण की भक्ति की महिमा का वर्णन किया गया है। भक्ति को मानव जीवन के लिए अमृत के समान बतलाया गया है।

५ भक्ति विधान—इसमें भी भक्ति तत्त्व की व्याख्या की गई है। भक्ति की महत्ता के साथ पुष्टिमार्ग की सर्वोत्तमता का समर्थन प्रभावशाली ढंग पर किया गया है। कवि ने अपने अनुभवों को भी स्थान दिया है।

६ पुष्टिपथ सारमणिदाम—इसमें पुष्टिमार्ग के भक्तों के लिए विविध विधान किए गए हैं। पुष्टिमार्ग के अनुसार ठाकुरजी के सेव्य रूपों, अष्ट सखाओं और मार्ग की बैठकों का (गद्दी) विवरण दिया गया है। वास्तव में पुष्टिमार्ग के इतिहास को इकट्ठा करने का प्रयत्न किया गया है।

७ विज्ञप्ति विलास—अपने अपराधों को प्रभु के सामने रखकर दीन भाव से स्फुरण के लिए याचना की गई है। इसमें १५१ पद हैं।

८ नाम प्रभाव बत्तीसी—'कवि केवल श्रीकृष्ण का कीर्तन ही है सार'—के रूप में प्राप्त गुरु आज्ञा से यह ग्रन्थ ३२ पंक्तियों में लिखा गया है। इसमें श्रीकृष्ण के नामों के प्रभाव का वर्णन किया गया है।

९ श्रीकृष्ण स्तवन चन्द्रिका—इसमें कुल ११६ पंक्तियाँ हैं जिनमें श्रीकृष्ण के नाम की महिमा का वर्णन किया है।

१० श्री पुष्टि भक्त रूपमालिका—इसमें एक पद में श्री वल्लभाचार्य जी के ८४ वैष्णवों की नामावली दी गई है।

११ वस्तु वृन्द दीपिका—यह काव्यात्मक मानकोष के समान है। इसमें १ से लेकर १०८ तक की संख्या को लेकर उस संख्या के वस्तु-समूह का वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

यह एक परम्परा संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश से होती हुई मध्यकाल तक आई और उसका प्रयोग अनेक कवियों ने किया है। ७०० से ७५० पदों में रचित यह ग्रन्थ दयाराम के विशाल ज्ञान और गाढ़ विद्वत्ता का सूचक है। दयाराम

९ भगवान् भक्ताधीनता
१० भगवन् इच्छोत्कर्षता
११—मायामत खण्डन
१२—भगनामद मालिका
१३—विश्वासामृत
१४—श्रीकृष्ण नामच दका
१५—श्रीकृष्ण नामचन्द्रिका
१६—श्रीकृष्ण नाम रत्नमालिका
१७—श्रीकृष्ण नाममाहात्म्य
१८—शुद्धाद्वैत प्रतिपादन
१९—स्तवन पीयूष
२०—सतयकउदव
२१—स्वल्पाहार प्रभाव
२२—श्री भागवद् माहात्म्य

गुजराती के कवि नर्मद ने दयाराम की सर्वप्रथम रचना 'काशी विश्वनाथ की लावणी' को माना है तदनन्तर दयाराम गुजराती और हिन्दी म रचनाएँ करते रहे। सम्प्रति उनकी जो हिन्दी रचनाएँ प्रकाशित या अप्रकाशित ग्रन्थों के रूप म सामने आई है उनका उल्लेख ऊपर हो चुका है। इनके अतिरिक्त अनेक ग्रन्थ तथा प्रकीर्ण पद साहित्य हस्तलिखित रूप म बिखरा पड़ा है जिसकी छानबीन होना शेष है।

दयाराम के ('सतसई' अतिरिक्त) कुछ महत्वपूर्ण ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है—

१ **रसिक रंजन**—इसमे १७ प्रकरण है। गुजराती म 'रसिकवल्लभ' और हिन्दी म 'रसिक रंजन' प्राय एक ही विषय को लेकर लिखे गए प्रतीत होते हैं।

'रसिक रंजन' म शुद्धाद्वैत सिद्धान्त का प्रतिपादन तथा मंडन किया गया है। भक्ति के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है। अनन्यता, भगवदाश्रयता, दीनता, कृपा, भगवदिच्छा, विषयों पर वाक्य की मधुमयी वाणी में विचार किए गए है। इसम कुण्डलियाँ, मत्तगयंद छन्दों का प्रधान रूप से उपयोग हुआ है।

२ श्रीकृष्ण अकल चन्द्रिका—इसमें 'दुवैया' छन्द के माध्यम से भगवान् के अकलित चरितों का वर्णन किया गया है। भगवान् के अनेक चरित हैं, जो आपस में विरोधी भी हैं। इसलिए इनको जानना कठिन है। भगवान् के विरुद्ध धर्माश्रयित्व के अनेक दृष्टान्त दिए गए हैं।

३ सिद्धान्त सार—इसमें कुल ४१ पद हैं। इसमें भी 'शुद्धाद्वैत' के सिद्धान्तों को व्याख्यायित करने का प्रयत्न किया गया है।

४ श्रीकृष्ण स्तवनामृत—१७६ पदों का यह ग्रन्थ है। इसमें कृष्ण की भक्ति की महिमा का वर्णन किया गया है। भक्ति को मानव जीवन के लिए अमृत के समान बतलाया गया है।

५ भक्ति विधान—इसमें भी भक्ति तत्त्व की व्याख्या की गई है। भक्ति की महत्ता के साथ पुष्टिमार्ग की सर्वोत्तमता का समर्थन प्रभावशाली ढंग पर किया गया है। कवि ने अपने अनुभवों को भी स्थान दिया है।

६ पुष्टिपथ सारमणिदाम—इसमें पुष्टिमार्ग के भक्तों के लिए विविध विधान किए गए हैं। पुष्टिमार्ग के अनुसार ठाकुरजी के सेव्य रूपों, अष्ट सखाओं और मार्ग की बैठकों का (गद्दी) विवरण दिया गया है। वास्तव में पुष्टिमार्ग के इतिहास को इकट्ठा करने का प्रयत्न किया गया है।

७ विज्ञप्ति विलास—अपने अपराधों को प्रभु के सामने रखकर दीन-भाव के स्फुरण के लिए याचना की गई है। इसमें १५१ पद हैं।

८ नाम प्रभाव बत्तीसी—'कवि केवल श्रीकृष्ण को, कीर्तन ही है सार'—के रूप में प्राप्त गुरु-आज्ञा से यह ग्रन्थ ३२ पंक्तियों में लिखा गया है। इसमें श्रीकृष्ण के नामों के प्रभाव का वर्णन किया गया है।

९ श्रीकृष्ण स्तवन चन्द्रिका—इसमें कुल ११६ पंक्तियाँ हैं जिनमें श्रीकृष्ण के नाम की महिमा का वर्णन किया है।

१० श्री पुष्टि भक्त रूपमालिका—इसमें एक पद में श्री वल्लभाचार्य जी के ८४ वैष्णवों की नामावली दी गई है।

११ वस्तु वृन्द दीपिका—यह काव्यात्मक नानकोष के समान है। इसमें १ से लेकर १०८ तक की संख्या को लेकर उस संख्या के वस्तु-समूह का वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

यह एक परम्परा संस्कृत, प्राकृत में होती हुई मध्यकाल तक आई और उसका प्रयोग अनेक कवियों ने किया है। ७०० से ७५० पदों में रचित यह ग्रन्थ दयाराम के विशाल ज्ञान और गाढ़ विद्वत्ता का सूचक है। दयाराम

मे वस्तुक्रम म ध्येय तो श्रीकृष्ण के गुणानुवाद का ही रखा है । अनेक छन्दों का इसमे विनियाग हुआ है । इसका रचनाकाल वि० १८७४ है ।

१२ पिंगलसार—छन्दशास्त्र का यह ग्रन्थ है । इसमे ५२ सम, अधमम और विषय छन्दो की रचना विधि दी गई है । छन्दो के लक्षण और उदाहरण दिए हैं । अपने उदाहरण भी दिए हैं । उदाहरण मुख्यतया श्रीकृष्ण विषयक ही हैं ।

१३ अनुभव मजरी—कवि के स्वप्न और प्रत्यक्ष अनुभवो का इसम वर्णन है । मुख्यतया श्रीकृष्ण, राधा, गुरु और अन्य कृष्ण सखाओ के साथ विभिन्न समयो और स्थानो पर साक्षात् या स्वप्न में कवि ने जो कुछ देखा उसका वर्णन इस ग्रन्थ मे हुआ है । यह एक बृहद्काय ग्रथ है ।

दयाराम के उक्त साहित्य पर सामान्य रूप से दृष्टिपात करने से यह ज्ञात होता है कि दयाराम का काव्य ससार भक्त और कवि के बीच विभाजित हुआ है । एक ओर चुस्त धार्मिक सद्धान्तिक प्रतिबद्ध रचनाएँ हैं, दूसरी ओर शृङ्गार और लोक-व्यवहार पर आधृत रचनाएँ हैं । दोनो ही अपने-अपने क्षेत्र मे उत्कृष्ट हैं ।

दयाराम की हिन्दी रचनाओ के वर्गीकरण करने का सर्वप्रथम प्रयत्न डॉ० अम्बाशकर नागरजी ने किया है । उन्होने ही सर्वप्रथम दयाराम की हिन्दी कृतियो को तीन वर्गों म विभाजित किया है[1]—

(१) सद्धान्तिक और साम्प्रदायिक

(२) भावात्मक और भक्ति शृङ्गारात्मक

(३) रीति एव काव्यशिक्षा विषयक

इधर दयाराम ने अनेक दोहे, सोरठे और छप्पय ऐसे भी प्रभूत मात्रा म मिलते हैं जिनका नीति और सूक्ति के रूप म अपना अलग महत्त्व है । 'सतसई' म भी नीति के दोहो की सख्या अधिक है । इसलिए काव्य के इस पक्ष को भी उक्त वर्गीकरण मे समाविष्ट करना समीचीन होगा । अत मेरा सुझाव है कि दयाराम के उपलब्ध काव्य को चार विभागो मे विभाजित करना उचित होगा—

(१) सद्धान्तिक और साम्प्रदायिक (२) भक्ति काव्य

(३) रीतिकाव्य और (४) नीति काव्य ।

---

१ दयाराम सतसई भूमिका

१ सैद्धान्तिक और साम्प्रदायिक काव्य—

दयाराम की सैद्धान्तिक रचनाओं में प्रधानतया शुद्धाद्वैत के प्रतिपादन और पुष्टिमार्ग की व्याख्या का स्वर प्रधान रहा है। इनमें अपरमत का खण्डन और स्वमत का मण्डन बड़े प्रभावी और सशक्त शब्दों में किया गया है। अपने मत के समर्थन में दयाराम ने कहीं कहीं पर कठोरता का आश्रय भी लिया है। अद्वैतवादियों को मूर्ख, खल, काना कहा गया है—

ब्रह्म सनातन आदिस्वयं प्रभु, अनूप अनामय अंशी अकामी।
ए सब धर्म करी जियमें कहि दत दयो सब कहे अधगामी॥
आतश्माल हि आननपानिपदादि, सबे हरि वेद की बानी।
सो छबि प्राकृत जीवसी जानत, जाकुं ब्रह्म कहे खल कानी॥

और—

तेरे मत में ब्रह्म निराकार, जिय प्रतिबिंब।
माया बिच क्यों कहे, कैसे सांच ठरेगो॥
माया तो मलिन और, ब्रह्म कु न रूप मूढ।
तू हि कहे बिंब बिना, प्रतिबिंब परेगो?॥[1]

अद्वैतवादियों को अनेक तर्कों से अनुत्तरित कर दयाराम ने पुष्टिमार्गीय भक्ति का सबल समर्थन किया है। भक्ति को गाय कहा गया है, ज्ञान-वैराग्य तो उसके बछड़े हैं, उसके दूध पर पलते हैं। भक्ति के सामने मुक्ति भी तुच्छ है। वह तो भक्ति की दासी है—

ज्ञानी मक्त सों क्यों सरत, बिना किये अनुमान।
कृष्ण आप फल भक्ति दे, वाहि मुक्ति को दान॥[2]

ये दार्शनिक ग्रन्थ केवल अपने मत के प्रतिपादन के लिए लिखे गये हैं। इनमें साहित्य तत्वों का प्राय अभाव है। भक्ति-विधान, रसिक-रंजन, सिद्धान्त-सार, सम्प्रदायसार, पुष्टिपथ रहस्य आदि रचनाओं में स्वमत समर्थन पर सर्वग्राही आग्रह है। इस प्रकार इन ग्रंथों में दयाराम शुद्धाद्वैत और पुष्टिमार्ग के प्रबलतम समर्थक के रूप में हमारे सामने आते हैं।

२ भक्ति-काव्य—

दयाराम उच्चकोटि के भक्त थे। उनका सारा ध्यान कृष्ण पर केन्द्रित हो गया था। वे कृष्ण में थे और कृष्ण उनके थे। जीव की मर्यादा से वे

---

१ रसिक रंजन।
२ द० सतसई छन्द ३११।

परिचित थे। इसलिए कृष्ण के प्रति अथाह प्यार लिए भक्ति सागर म निमग्न थे। भक्ति ईश्वर म परम अनुरक्ति है—सा हि परानुरक्ति ईश्वरे। अनुरक्ति के साथ उसकी पीडा, व्याकुलता, मिलनेच्छा आदि सभी बातें भक्ति के साथ स्वाभाविक रूप से जुड जाती हैं। भक्ति म शृङ्गार आ जाता है, शृङ्गार भक्तिमय हो जाता है—

श्याम मेरे नैन बीच समाय रह्यो,
सोइ जाने है वजरो।
जित देखु तित माशूक मोहन,
नैन हों से मजरा।
प्रान प्रीतम मेरे हार हिया के,
हायन को गजरो।
दया के प्रभु की छब चित्तम चुभी,
ताको उर साचो वजरो।
श्याम मेरे नैन बीच समाय रह्यो।

एक बार प्रियतम क दर्शन हो गये तो वे नेना म ऐसे समा गय कि जहां-जहा दृष्टि पहुँचती है वहा वहा प्रियतम ही दिखाई देन हैं—

मुकर मुकर सब वस्तु भइ, नयन अयन किय लाल।
द्रग पसार जित जित अली, तित तित लखु गुपाल॥

भक्ति शृङ्गार की य रचनाएँ वास्तव मे दयाराम को एक उच्चकोटि क कवि के रूप मे हमारे सामन प्रस्तुत करती हैं। "दयाराम घोर शृङ्गारी कवि हैं, भक्ति तो बहाना है, उन्होंने रूप और यौवन के उद्दाम चित्रो को भक्ति का जामा पहनाया है"—गुजराती साहित्य के कुछ आलोचकों ने दयाराम की रचनाओ म व्यक्त राधा कृष्ण की लीलाओ को देख यह आक्षेप किया है। गुजराती साहित्य मे विशेषतया गरबा और गरबियो म प्रेम का जो उद्वेग और उल्लास दिखाई देता है वह हिन्दी रचनाओ म प्राय नही मिलता है। हिन्दी मे उनका भक्ति शृङ्गार सयत है। 'सतसई' म बहुत मादक चित्र नही हैं। भक्त की आकुलता और दीनता ही अधिक प्रकट हुई है। 'सतसई' म भक्त तो पतित है, अधम है। कृष्ण ही उसके उद्धारक हैं। ससार म मायाग्रस्त भक्त का आर्त आलाप है।

सुनें घार सांचव्यों ठयों, म्हारो हों घनश्याम।
हैं न देन को कछ कछु, घर को करो गुलाम॥

शार्यो मो भो जलधि हरि, अजा उपल बधिपाय।
दास कर दिय नाउ निज, तर्यो न बूर्यो जाय ॥

भक्ति काव्य मे 'रसिक रजन' और 'सतसई' साहित्यिक दृष्टि से सफल रचनाएँ हैं। अन्य रचनाएँ यथा श्रीकृष्णनाम चन्द्रिका, श्रीकृष्ण स्तवन चन्द्रिका, नाम प्रभाव बत्तीसो और स्तवन पीयूष आदि रचनाएँ स्तुति-प्रार्थना परक हैं। कुछ अन्य रचनाएँ नाम कीतनात्मक है। दयाराम के भक्ति-काव्य के अन्तर्गत वे रचनाएँ भी आती हैं जिनका आधार श्रीमद्भागवत है। भागवत पुष्टि-मार्गी वैष्णवो का प्रेरणा स्रोत रहा है। श्रीमद्वल्लभाचार्य जी ने भागवत् को वेद-उपनिषद, गीता और ब्रह्मसूत्र के समान महत्व प्रदान किया। दयाराम ने भागवत माहात्म्य, दशम-अनुक्रमणिका, श्रीमद्भागवदानुक्रमणिका आदि रचनाए कर श्रीमद्भागवत के प्रति अपनी आस्था प्रकट की है। भक्ति सम्बन्धी अनेक सुन्दर रचनाएँ दयाराम के स्फुट पदो म भी मिलती है।

३ रीतिकाव्य—

दयाराम रीतिकाल के अन्त म आते हैं। रीतिकाल अपने शृङ्गार और काव्य शिल्प के विषय म बडा आग्रही रहा है। रीतिकाल की कविता न समाज-सुधार के लिए थी न परात्पर शक्ति का साक्षात्कार करने की उसमे लालसा थी। वह शुद्ध कविता थी। रूप की लालसा, प्रेम की पिपासा और कारीगरी की आकाक्षा उसमे यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होती है। दयाराम इस प्रवाह स असपृक्त न रह सके। 'सतसया और 'रसिक रजन' के शृगार-निरूपण म उनकी यह प्रवृत्ति स्पष्टत दिखाई देती है। बिहारी न अपनी चन्द्रमुखी के लिए मोहल्ले भर म पचाग की निरर्थकता सिद्ध की है, तो दयाराम चुपके स श्यामा को सलाह देत ह कि सुबह बिना घूघट निकाले पनघट मत जाना नहीं तो चकवा-चकवी फिर उदास हो जायेंगे—

श्यामा तू जिन जाइ सर, बिन घूघट पर ओस।
परिहैं तेरो बदन लखि, कोर कोक मुख सोस ॥

रीतिकाल की दूसरी परम्परा थी काव्य शास्त्रीय ग्रन्थो का प्रणयन करना। दयाराम ने 'पिगलसार' ग्रथ रचकर इस परम्परा का अनुसरण किया है। 'वस्तुवृन्द दीपिका' मे दयाराम का पाण्डित्य प्रकट हुआ है।

रीतिकाल की तीसरी प्रवृत्ति थी चमत्कार सर्जन की। दयाराम ने अनुप्रास, यमक जैसे शब्दालकारो से काफी हद तक शब्दक्रीडा की है।

मोहि मोह तुम मोह को, मोहेन मो कहुँ धारि।
मोहन मोहन वारियें, मोहनि मोह निवारि॥

× × ×

राजरूप रसपान सुख, समुझत हैं मों नन।
में न बैंन हैं नैन को, नैन नहीं हैं बैंन॥

× × ×

मथुरा बीच को बरन तजि रहे उलटी रही होय।
जो ना रहत तो बचन बीच समुझी सजो है सोय॥

४ नीति-काव्य—

दयाराम कथा वाचक थे। कीर्तनकार थे। कथा वाचक होने के कारण उन्हें जनता के सामने ससार के आचार-विचार, धर्म व्यवहार, रीति-नीति, स्वभाव-परभाव पर भी दृष्टान्त देने पड़े होंगे। अत उनकी रचनाओं में सासारिक गतिविधियों पर टिप्पणियाँ, सूक्तियों का आना स्वाभाविक है। साहित्य मे नीति वाक्यो की यह परम्परा बहुत पुरानी है। हिन्दी मे तुलसी, रहीम, बिहारी की मार्मिक सूक्तियाँ मिलती हैं। दयाराम ने भी अपने दैनिक अनुभवों को समर्थ, मार्मिक और मौलिक रूप मे प्रस्तुत किया है। उनकी ये नीति सूक्तियाँ हिन्दी साहित्य के सर्वोत्तम सूक्तियो से टक्कर लेने मे समर्थ हैं। इस पर विस्तृत रूप से आगे विचार किया गया है।

—

४ || सतसई-परम्परा में दयाराम सतसई

जीवन के प्रभात में प्राची में उदित अपनी किरणों से चैतन्य का संचार करने वाली उषा को देखकर वैदिक जन के हृदय में आह्लाद का सागर उमड़ पड़ा और उसके अधरों पर बरबस पंक्तियाँ थिरक उठीं—

अंग अंग से चैतन्य उगलती सी
प्रकाश नहाती सी
एक दम खड़ी हो गयी
—कि हम मर्त्य इस स्वर्ण की पुतली को
क्षण भर देख सकें
—और हमारे जीवन से अन्धकार सब दूर हो जाय।[1]

इनमें न कथा का तन्तु है न पूर्वापर की अपेक्षा। अपने आपमें आनन्दीभूत हृदय की उन्मुक्त तरंगें हैं। इनमें एक परिस्थिति को अंकित किया गया है, एक कल्पना को आकार दिया गया है। ऋग्वेद ऐसे ही मुक्तकों का सर्वप्रथम संग्रह है।

जीवन का क्रम ज्यों-ज्यों विकसित होता गया त्यों-त्यों परिस्थितियाँ जटिल होती गईं। मानव की विचार धारा ऐहिक और पारलौकिक तत्वों को ग्रहण करती हुई आगे बढ़ने लगी। गूढ़ विचारों का दौर चला। लम्बी-लम्बी कथाएँ अस्तित्व में आईं। दर्शनों की तलाश होने लगी। महाकाव्यों का प्रणयन हुआ। परन्तु मानव-मन प्रकृति-दर्शन में विस्तृत वनस्थली पसन्द करता है, घर को सजाने के लिए उसे एक गुलदस्ता काफी है। प्रबन्ध काव्य, आख्यान, नाटक और कथाओं के होते हुए भी कवि अपने आपको उच्छ्वसित मुक्तकों से विरक्त न कर सका। जब कभी उसको मौका मिला, अपने हृदय के निरीक्षण को उसने वाणी के वस्त्र पहनाये—

---

२ ऋग्वेद ५ ८० ५ ६

असारे खलु संसारे सारं श्वशुरगृहम् ।
हरो हिमालये शेते हरिश्शेते क्षीराम्बुधौ ॥
गम्मिहिसि तस्स पास सुन्दरि, मा तुरअ वड्ढअ मिअको ।
दुद्धे दुद्धं मिअ चन्दिआइ को पेच्छइ मुहं दे ॥[1]

कथाभिनिवेशी साहित्य और पूर्वापर निरपेक्षी साहित्य दोनों ही सामान्य रूप से चलने लगे। पंडितों ने इन दोनों को काव्य में समेट लिया है। एक प्रबन्ध काव्य के रूप में सामने आया, दूसरा मुक्तक रूप में। प्रबन्ध काव्य का अपना विस्तार है, अपना परिसर है। महाकाव्य उसका सर्वोत्तम रूप है। मुक्तक मस्त मौला है। उसे न ऊधो से लेना है न माधो को देना है। वह अपने आप में केंद्रित है। काव्यशास्त्र मीमांसकों ने इसे भी व्याख्या में बांधने का प्रयत्न किया है—

(१) विमोइस विरहित व्यवच्छिन्न विशेषितम् ।
भिन्न स्यावय निर्व्यूढ मुक्तक वाभिशोभितम् ॥[2]

(२) मुक्तकं श्लोक एवैकश्चमत्कारक्षमः सताम् ।[3]

( ) छन्दोबद्ध पद पद्य तेनैकेन च मुक्तकम् ।[4]

मुक्तक स्वतन्त्र है। पूर्वापरनिरपेक्षी होता है। वह सुन्दर, मार्मिक और चमत्कारजनक है। उसकी एक झलक ही मन्त्रमुग्ध करने में समर्थ है। इन विशेषताओं का समाहार करते हुए आचार्य अभिनवगुप्त ने मुक्तक को मूलतः रससिक्त रचना कहा है—पूर्वापरनिरपेक्षेणापि हि येन रसचर्वणा क्रियते तदेव मुक्तकम् ।[5]

मुक्तक अपने आपमें स्वतन्त्र होता है। अपने आपमें जो रसोद्रेक कराने में समर्थ होता है, पाठकों के मन को मुग्ध कर देता है वह मुक्तक है। मुक्तक में एक चमत्कार, एक रससिक्त अनुभूति, एक मोहक चित्र, एक मार्मिक विधान प्रस्तुत करने की अद्भुत क्षमता होती है। विभाव, अनुभाव और

---

१ [जा रही हो उसके पास सुन्दरि। जल्दी क्यों! चांद बढ़ रहा है।
दूध में जैसे दूध, वैसे चाँदनी में तेरा मुखड़ा कौन देख सकेगा]
—गाहा सतसई

२ शब्दकल्पद्रुम ।

३ अग्निपुराण ।

४ साहित्यदर्पण छन्द ३०१ ।

५ ध्वन्यालोक टीका ।

संचारी एक ही उक्ति मे केन्द्रित होकर पाठक पर अपना ऐसा प्रभाव डालते हैं कि पाठक रस-मग्न हो जाता है। प्रबंधकाव्यों की तरह इनमें भी रसास्वादन क्षमता होती है। आनन्दवर्द्धनाचार्य का स्पष्ट कथन है—तत्र मुक्तकेषु रसबंधाभिनिवेशिनः कवेस्तदाश्रयम्। रसबंधाश्रयम् औचित्यम्। मुक्तकेषु प्रबंधेष्विव रसाभिनिवेशिनः कवयो दृश्यन्ते।[1]

प्रबंधकाव्यों में रसाभिनिवेश करने वाले कवि होते हैं जिनका एक-एक मुक्तक प्रबंधों की स्पर्धा में खड़ा रह सकता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में— "यदि प्रबंधकाव्य एक विस्तृत वनस्थली है तो मुक्तक एक चुना हुआ गुलदस्ता है। इसी से यह सभा समाजों के लिए उपयुक्त होता है। उसमें उत्तरोत्तर अनेक दृश्यों द्वारा संघटित पूर्ण जीवन या उसके किसी एक पूर्ण अंग का प्रदर्शन नहीं होता है, बल्कि कोई एक रमणीय खण्ड दृश्य इस प्रकार सहसा सामने ला दिया जाता है कि पाठक या श्रोता कुछ क्षणों के लिए मन्त्रमुग्ध सा हो जाता है। इनके लिए कवि को मनोरम वस्तुओं और व्यापारों का एक छोटा सा स्तबक कल्पित करके उन्हें अत्यन्त संक्षिप्त और सशक्त भाषा में प्रदर्शित करना पड़ता है। अतः जिस कवि में कल्पना की समाहार शक्ति जितनी ही अधिक होगी उतना ही वह मुक्तक की रचना में सफल होगा।"[2]

इस प्रकार एक सफल मुक्तक के लिए पूर्वापरनिरपेक्षता, मार्मिकता, रसमग्नता, चमत्कार क्षमता, अर्थगौरवता और सालंकारता से युक्त होना आवश्यक है।

मुक्तक सर्वत्र होते हैं। गोष्ठियों में, राज-दरबारों में इनका अपना महत्व होता है। इनकी लोकप्रियता का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि इनकी एक लम्बी परम्परा भारतीय साहित्य मे प्राचीनकाल से सतत चली आ रही है।

यद्यपि मुक्तकों का आपसी पूर्वापरसम्बन्ध नहीं होता है, तथापि एक विषय को लेकर दो-चार मुक्तक लड़ियों को एक सूत्र में पिरोने की प्रथा रही है। इस कारण मुक्तकों के छोटे-मोटे संग्रह अस्तित्व मे आये हैं। साहित्यदर्पणकार ने ऐसे संग्रहों को 'कोष' की संज्ञा से अभिहित किया है—

---

१ ध्वन्यालोक।

२ हिन्दी साहित्य का इतिहास सं० २०३५ पृ० १७१।

कोष श्लोकसमूहस्तु स्यादन्योन्यानपेक्षक ।
व्रज्याक्रमेण रचित स एवाति मनोरम ॥
द्वाभ्यां तु युग्मक सन्दानितक त्रिभिरिष्यते ।
कलापक चतुर्भिश्च पञ्चभि कुलक मतम् ॥[1]

दो मुक्तक एक साथ हो तो युग्मक, तीन हो तो सन्दानितक, चार हो तो कलापक और पाच हो तो कुलक कहा जाता है। इस तरह सख्या पर आधृत मुक्तको के अनेक सग्रह सामने आते हैं। सस्कृत, प्राकृत और अपभ्रश से होती हुई यह परम्परा हिन्दी मे सम्पूर्ण रूप से विकसित हुई है। सात मुक्तको के सग्रह को सप्तक, आठ के सग्रह को अष्टक और सोलह के सग्रह को 'षोडसी' कहा गया है। इसी प्रकार बीसा, चौबीसा, पच्चीसा, बालीसा, पचासा, बावनी, शतक, सतसई और हजारा नाम से अनेक मुक्तक सग्रह हिन्दी मे मिलते हैं। इस दृष्टि से हिन्दी साहित्य का रीतिकाल बडा समृद्ध युग रहा है। उस समय सतसई के अतिरिक्त मुबारक के 'तिलशतक और अलक शतक', मण्डन कवि का 'नन पचासा' और 'अलक बत्तीसी', गोविन्द गिलाभाई की 'लोचन पच्चीसी', पयोधर पच्चीसी और 'राधामुख षोडशी', रसनिधि और हफीज्जुलाखाँ के 'हजारे' आदि मुक्तक-कोषो का अद्भुत सकलन हुआ है।

मुक्तक-कोष काव्यो मे सर्वाधिक महत्त्व 'सतसई' को प्राप्त हुआ है। इसकी लोकप्रियता इतनी बढी कि प्रबन्ध कवियो ने भी इसे आदर के साथ अपनाया है। इसमे सन्देह नही है कि मुक्तक कवियो की प्रतिष्ठा का सर्वोत्तम शिखर 'सतसई' रही है, जैसे महाकाव्य प्रबन्ध कवियो का कीर्तिकलश रहा है। वास्तव मे प्रबन्ध रचना मे जो स्थान महाकाव्य का है, मुक्तक मे वह स्थान सतसई का है।

सतसई परम्परा

सतसई परम्परा का आरम्भ प्राकृत भाषा मे रचित हाल (सातवाहन) की गाहा सतसई से माना जाता है। गाहा सतसई का रचनाकाल ई० सन् २०० से ई० सन् ४०० के बीच नियत किया जाता है।[2] इस सतसई मे जन-जीवन तथा व्यावहारिक वस्तुस्थितियो के साथ सामीप्य की एक ऐसी भावना

१　साहित्यदर्पण　विश्वनाथ ६। ३०८, ३०९।

२　सस्कृत साहित्य का इतिहास लेखक ए० बी० कीथ पृ० २७८।
(हिन्दी अनुवाद)

चित्रित की गई है जो संस्कृत कविता में कठिनाई से पाई जाती है। डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी का इस युग की रचनाओं के प्रति यह कथन कि 'सन् ईसवी के बाद एक तीसरी वस्तु का अचानक आविर्भाव होता है। यह अध्यात्मवादी या मोक्षकामी रचनाएँ भी नहीं हैं और कर्मकांडवादी या स्वर्गकामी भी नहीं हैं। इनमें ऐहिकतामूलक सरस कवित्व है। ये उस जाति की रचनाएँ हैं जिसे अंग्रेजी में 'सेक्युलर कविता कहते हैं।''[1] वास्तव में हाल की इस सतसई में सेक्युलर कविता के घरलू चित्र हैं।

गाहासतसई में हाल ने अनेक गाथाओं में से ७०० गाथाएँ चुनकर एकत्र की है।[2] गाथाओं के रचयिता भिन्न-भिन्न हैं। हाल की अपनी स्वनिर्मित गाथाएँ भी हैं। अतः यह प्रथम सतसई किसी एक व्यक्ति की रचना न होकर एक व्यक्ति के द्वारा किया गया अनेक व्यक्तियों की गाथाओं का स्वरुचि-अनुकूल संकलन है। इसमें १०० गाथाओं के सात शतक हैं। प्रत्येक शतक के अंत में उपसंहार स्वरूप एक-एक गाथा है। इस तरह कुल गाथा-संख्या ७०७ है। गाथा प्राकृत भाषा का एक छन्द है जिसमें प्रथम और तीसरे चरण में १२-१२ मात्राएँ और द्वितीय-चतुर्थ चरण में क्रमश १५-१८ मात्राएँ होती हैं।

गाथा सप्तशती का वर्ण्य-विषय मुख्यतः शृंगार है। जन-जीवन के सीधे-सादे दृश्यों के बीच प्रेम और शृंगार के मोहक चित्र इसमें उपलब्ध होते हैं। युवती चन्द्रमा से प्रार्थना करती है कि वह उसे अपनी उन किरणों से छूने की कृपा करे जिन किरणों से उसने उसके प्रियतम का स्पर्श किया है। इतना ही नहीं रात्रि से वह निरन्तर बने रहने की याचना करती है क्योंकि सुबह होगी तो उसके प्रियतम को चले जाना होगा—

अमअमअ गअणसेहर रअणीमुहतिलअ चन्द वे छिवसु।
छित्तो जेहिं पिअअमो मम पि तेहिं विअ करेहिं ॥[3]

---

१ हिन्दी साहित्य की भूमिका पृ० ९१।

२ सत सताइ कइवच्छलेणं कोडीअ मज्झआरम्मि।
हालेण विरइआइ सालंकाराण गाहाण ॥

३ अमृतमय, गगनशेखर रजनीमुखतिलक चांद ! छू दे।
छुआ है जिनसे प्रियतम को, मुझे भी उन्हीं किरणों से ॥

प्राकृत की इन दो सतसइयो का प्रभाव इतना प्रभविष्णु रहा कि संस्कृत की आभिजात्य कविता भी इस ओर अनुकरण करने के लिए लालायित हुई। ७०० छन्द संख्या वाले अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थो की रचना संस्कृत मे हुई। दुर्गा सप्तशती और श्रीमद्भगवतगीता में ७०० श्लोक होने के कारण इन्हे भी सतसई परम्परा मे समाविष्ट किया जा सकता है।[१] परन्तु ये दोनो पुराणो के अंग है और सतसई की जो सेक्युलर परम्परा है उससे ये अलग पन्थ हैं। संस्कृत मे गाथा सप्तशती के ढंग की रचना है गोवर्द्धनाचार्य की आर्या सप्तशती।

संस्कृत की प्रथम सतसई आर्या-सप्तशती है। इसका रचनाकाल १२वी शताब्दी मे पडता है। छन्द के नाम पर इसका भी नामकरण हुआ है। अकारादि क्रम से ७५६ आर्याएँ रची गई है। आरम्भ मे कई देवताओ तथा पूर्ववर्ती कवियो की स्तुति प्रशंसा की गई है। अन्त मे लेखक ने अपनी रचना के विषय मे अपना मन्तव्य भी प्रकट किया है।

आर्या सप्तशती मे विषयो की विविधता है। परन्तु शृंगार का विलास प्रमुख है। उसके सभी पक्ष इसमे उभरे है। गाहा सतसई का इस पर गम्भीर प्रभाव परिलक्षित होता है, कहा-कही पर तो गाथाओ का अनुवाद ही हुआ है। तो भी गोवर्द्धनाचार्य ने पर्याप्त मौलिकता दिखाई है। उन्होने अपनी सतसई को न शतको मे विभाजित किया, न विषयात्मक शीर्षको मे। अकारादि क्रम मे संकलन किया है। ग्रन्थारम्भ और ग्रन्थ समाप्ति की विधिवत् आयोजना कर सतसई-परम्परा को एक ठोस काव्य रूप देने का प्रयत्न किया है।

गोवर्द्धनाचार्य की सप्तशती से प्रभावित होकर ई० सन् १५६६ मे विश्वेश्वर पंडित ने अपनी आर्यासप्तशती का निर्माण किया है। पंडितजी ने ग्रंथ संघटना मे गोवर्द्धनाचार्य का पूर्ण अनुसरण किया है। मंगलाचरण-ग्रन्थारम्भ-वर्ण्य विषय ग्रन्थ समाप्ति के साथ श्लोको का अकारादिक्रम रखा है। साथ ही साथ स्वयं इसकी संस्कृत टीका भी प्रस्तुत की है।

इसमे भी मुख्यतया शृंगार ही मुख्य रहा है। शृंगार के ही आलिंगन, चुम्बन, सुरत, मान और प्रवास आदि अंगो का वर्णन हुआ है। विषय परम्राभुक्त होते हुए भी कवि की मौलिकता उसकी मनोमुग्धकारी अभिव्यक्ति में दिखाई देती है—

---

१ देखिए—रीतिकालीन शृंगारिक सतसइयों का तुलनात्मक अध्ययन डॉ० पुष्पलता।

वल्ल हिर घरहिअओ पवसि इहि विओत्ति सुणइजणम्मि ।
तह वड्ढ भअवइणिसे ! जह से वल्ल विअण होइ ॥[१]

शृंगार के अतिरिक्त अन्य विषयों का भी इसमें समावेश किया गया है। प्रकृति का अत्यन्त उदात्त चित्रण हुआ है। सुन्दर, सरस मूर्तियों के द्वारा अभिव्यक्ति को मार्मिक और प्रभावशाली बनाया गया है। विषय और शैली की दृष्टि से इस सतसई ने सतसई परम्परा के लिए एक मानदण्ड प्रस्थापित किया है। संस्कृत और हिन्दी की सतसइयों ने इसका पुनःपुनः अनुसरण किया है।

प्राकृत में ही हाल की परम्परा में दूसरी सतसई वज्जालग्ग है। श्री जयवल्लभ सूरि ने हाल के अनुकरण पर विविध कवियों द्वारा विरचित श्रेष्ठ गाथाएँ चुनकर वज्जालग्ग की रचना की है। इसमें कुल ७९४ गाथाएँ हैं। गाथाओं को अलग-अलग विषयों के अन्तर्गत संग्रहीत किया गया है। इन विषयों को 'वज्जा' कहा गया है। इसलिए ये गाथाएँ 'वज्जा' क्रम में होने के कारण पुस्तक का नाम 'वज्जालग्ग' [व्रज्यालग्नम्] रखा गया है। कुछ वज्जा शीर्षक इस प्रकार हैं—सज्जन, दुर्जन, मित्र, नीति, धैर्य, साहस इत्यादि। शृङ्गार इसका भी मुख्य विषय है। नखशिख-वर्णन, प्रेमवर्णन, नायक-नायिका वर्णन के साथ भाव अनुभावों और संचारियों की सुन्दर अभिव्यंजना हुई है।

रूप विधान की दृष्टि से 'वज्जालग्ग' में एक व्यवस्था दिखाई देती है। यहाँ गाथा की संख्या क्रमशः चलती है और उनका शीर्षक देकर विषय-विभाजन किया गया है। शैली इसकी चमत्कारपूर्ण है—दारिद्र्य तुझे नमस्कार है, तुम्हारे प्रसाद से मैं सिद्ध हुआ हूँ क्योंकि मैं दुनिया को देखता हूँ, दुनिया मुझे नहीं देखती है—

दारिद्दय तुज्झ नमो, जस्स पसाएण एरिसी रिद्धि ।
पेच्छामि सयललोए, ते मह लोया न पेच्छन्ति ॥[२]
सद्दयलोह दोसेहि वज्जियं, सुललिय फुडं महुरं ।
पुणेहि कहवि पावइ छन्दे कव्व कलत्त च ॥[३]

---

१ प्रातः निश्चित चला जायेगा निष्ठुर प्रियतम, यह सुनकर।
(बोली) इस प्रकार बढ़ो भगवति रात्रि जिससे कि प्रातः होने न पाये।

२ वज्जालग्गम गाथा १३९।

३ शब्दप्रचुर, दोषरहित, सुललित, स्फुट और मधुर।
पुण्य से ही कवि पाते हैं कविता और कामिनी को॥ गाथा २४

प्राकृत की इन दो सतसइयो का प्रभाव इतना प्रभविष्णु रहा कि संस्कृत की आभिजात्य कविता भी इस ओर सचरण करने के लिए लालायित हुई। ७०० छन्द सख्या वाले अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थो की रचना संस्कृत मे हुई। दुर्गा सप्तशती और श्रीमद्भगवतगीता म ७०० श्लोक होने के कारण इन्हें भी सतसई परम्परा मे समाविष्ट किया जा सकता है।[1] परन्तु ये दोनो पुराणो के अग है और सतसई की जो सेक्युलर परम्परा है उससे ये अलग पड़ते हैं। संस्कृत मे गाथा सप्तशती के गोत्र की रचना है गोवर्द्धनाचार्य की आर्या सप्तशती।

संस्कृत की प्रथम सतसई आर्या सप्तशती है। इसका रचनाकाल १२वी शताब्दी में पडता है। छन्द के नाम पर इसका भी नामकरण हुआ है। अकारादि क्रम से ७५६ आर्याएँ रखी गई है। आरम्भ म देवी-देवताओं तथा पूर्ववर्ती कवियो की स्तुति प्रशसा की गई है। अन्त म लेखक ने अपनी रचना के विषय मे अपना मन्तव्य भी प्रकट किया है।

आर्या सप्तशती मे विषयो की विविधता है। परन्तु शृ गार का विलास प्रमुख है। उसके सभी पक्ष इसमे उभर हे। गाहा सतसई का इस पर गम्भीर प्रभाव परिलक्षित होता है, कही-कही पर तो गाथाओ का अनुवाद ही हुआ है। तो भी गोवर्द्धनाचार्य ने पर्याप्त मौलिकता दिखाई है। उन्होने अपनी सतसई को न शतको मे विभाजित किया, न विषयात्मक शीर्षको में। अकारादि क्रम मे सकलन किया है। ग्रन्थारम्भ और ग्रन्थ समाप्ति की विधिवत् आयोजना कर सतसई-परम्परा को एक ठोस काव्य रूप देने का प्रयत्न किया है।

गोवर्द्धनाचार्य की सप्तशती से प्रभावित होकर ई० सन् १५६६ म विश्वेश्वर पडित ने अपनी आर्यासप्तशती का निर्माण किया है। पडितजी ने ग्रंथ सघटना मे गोवर्द्धनाचार्य का पूर्ण अनुसरण किया है। मगलाचरण-ग्रन्थारम्भ-मध्य विषय-ग्रन्थ समाप्ति के साथ श्लोको का अकारादिक्रम रखा है। साथ ही साथ स्वय इसकी संस्कृत टीका भी प्रस्तुत की है।

इसमे भी मुख्यतया शृ गार ही मुख्य रहा है। शृ गार मे ही आलिंगन, चुम्बन, सुरत, मान और प्रवास आदि अगो का वर्णन हुआ है। विषय परम्पराभुक्त होते हुए भी कवि की मौलिकता उसकी मनोमुग्धकारी अभिव्यक्ति मे दिखाई देती है—

---

१ देखिए—रीतिकालीन शृगारिक सतसइयों का तुलनात्मक अध्ययन डॉ० पुष्पलता।

रमणीनां कुचमुकुलोपरि निवधाने कर दयिते ।
मुकुली भवति नयने अपि तत्स्पर्शस्पृहावशेनेव ॥[1]

—मुकलित कुचो पर प्रिय के हाथ का स्पर्श होते ही नायिका आनन्दा-तिरेक मे नयन मूद लेती है। कवि उत्प्रेक्षा करता है कि नेत्र तो स्वय इसलिए मुकलित हो गए ताकि प्रिय के हाथो का स्पर्श उन्हें भी प्राप्त हो क्योकि प्रिय का स्पर्श प्रथम मुकलितो को ही प्राप्त होता है। इस कथन भगिमा ने कवि उक्ति का रसवती बनाया है।

उपर्युक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि प्राकृत-सस्कृत मे सतसई की एक ठोस परम्परा धीरे धीरे एक निश्चित आकार ले चुकी थी। प्राकृत सतसइया भिन्न-भिन्न कवियो के मुक्तको का एक सविकृत सकलन के रूप म सामने आती हैं। सस्कृत म उनका रचयिता एक था और मगलाचरण और ग्रन्थ समाप्ति की प्रथा को पुरस्कृत कर शास्त्रीय आधार प्रदान करने का प्रयत्न भी किया गया था। ग्राम्य-जीवन के स्वाभाविक चित्रो के नागर-जीवन के ललित-कलित चित्रो का भी वर्ण्य विषय मे सम्मिलित किया गया था। छन्दो की सख्या ७०० से अधिक और आठ सौ के भीतर मर्यादित रखी गई थी।

हिन्दी का सतसई साहित्य प्राकृत और सस्कृत की परम्परा का उत्तरा-धिकारी बना और १७वी शती से लेकर २०वी शताब्दी तक 'सतसई' की एक अविच्छिन्न परम्परा हिन्दी साहित्य मे चलती आई है। हिन्दी की निम्नलिखित सतसइया मुख्य रूप से प्रकाश म आई हैं—

१—तुलसी सतसई	वि०स०, १६४२	ज्ञान-उपदेश
२—रसनिधि सतसई	वि०स० १६६०-७०	शृ गार-भक्ति
३—बिहारी सतसई	वि०स० १६६२	शृ गार-नीति भक्ति
४—रहीम सतसई	वि०स० १७२०	ज्ञान-उपदेश-नीति
५—मतिराम सतसई	वि०स० १७३८	शृ गार-भक्ति-नीति
६—वृ द सतसई	वि०स० १७६१	ज्ञान-उपदेश-नीति
७—यमक सतसई	वि०स० १७६१	नीति
८—विक्रम सतसई	वि०स० १८५५-६०	शृ गार-भक्ति-नीति
९—राम सतसई	वि०स० १७६०-८०	शृ गार-भक्ति-नीति

[1] आर्यासप्तशती [गोवर्धनाचार्य] ६८९ छन्द।

१०—दयाराम सतसई	वि०स० १८७२	भक्ति शृङ्गार-नीति
११—ब्रजविलास सतसई	,, १८८६	शृङ्गार भक्ति-नीति
१२—आनन्दप्रकाश सतसई	,, १८६०	शृङ्गार-भक्ति-नीति
१३—सतसया रामायण	,, १६१०	रामकथा
१४ वीर सतसई	,, १६१४	वीररस
१५—बसन्त सतसई	,, १६३१	अन्योक्तिपरक
१६—वीर सतसई	× सन् १६२७ ई०	वीररस-देशप्रेम आदि
१७—प्रेम सतसई	× सन् १६३७ ई०	शृङ्गार-नीति-भक्ति
१८—हरिऔध सतसई	× सन् १६४७ ई०	देशप्रेम-ईश्वर गुणगान
१६—किसान सतसई	× सन् १६४८ ई०	किसान-महत्व
२०—ज्ञान सतसई	× सन्	ज्ञान वैराग्य[1]

इन सतसइयो के अतिरिक्त नाथूराम की वीर सतसई, अमृतलाल की अमृत सतसई, मोहनसिंह की मोहन सतसई, बुधजन की बुधजन सतसई और दीनदयाल की बुधजन सतसया का भी उल्लेख मिलता है।[2]

हिन्दी साहित्य मे सतसई परम्परा को दृष्टि मे रखकर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि हिन्दी-सतसई परम्परा वैविध्यपूर्ण रही है। प्राकृत और सस्कृत मे जहाँ शृङ्गार को मुख्यत सतसई का प्रतिपाद्य माना गया है वहाँ हिन्दी म वर्ण्य विषय का विस्तार अपने ढग से स्वतन्त्र रूप से हुआ है। इस दृष्टि से हिन्दी सतसइयो का विभाजन दो भागो म किया जा सकता है—१ शृगार-प्रधान सतसइयाँ और २ शृगारेतर सतसइयाँ।

१ शृगार प्रधान सतसइयो मे बिहारी-सतसई को इस परम्परा के शिखर का सम्मान प्राप्त है। इसमे मुख्यत शृगार के ही आकर्षक चित्र निखरे हैं। भक्ति और नीति का निरूपण गौण रूप से हुआ है। शृगार-प्रधान सतसइयो मे मतिराम सतसई, रसनिधि-सतसई, विक्रम सतसई, राम सतसई, ब्रजविलास सतसई और आनन्दप्रकाश सतसई का समावेश होता है। इस परम्परा की ब्रजसतसई और दयाराम सतसई मे शृङ्गार का रूप मर्यादित और सयत है। इनमे भक्ति और नीति को भी समान महत्व मिला है।

× प्रकाशन वर्ष हैं।

१ रीतिकालीन शृङ्गार सतसइयो का तुलनात्मक अध्ययन डॉ० पुष्पलता के आधार पर।

२ देखिए 'राजस्थान पिंगल साहित्य' डॉ० मो० मेनारिया, पृ० १६३।

शृङ्गारेतर सतसइयो मे विषयो का वैविध्य रहा है। तुलसी सतसई मे भक्ति ज्ञान और कर्म के निरूपण के साथ उपदेश प्रधान प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं। राजेन्द्र शर्मा रचित 'ज्ञान सतसई' मे आत्मा, ब्रह्म, व्यष्टि, समष्टि को लेकर विचार किया गया है। ये चिन्तनात्मक स्तर की सतसइयाँ है।

इस कोटि मे दूसरे स्तर पर श्री जगतसिंह सेंगर की 'किसान सतसई' सूर्यमल्ल मिश्रण की 'वीर सतसई', वियोगी हरि की 'वीर सतसई' और अयोध्यासिंह 'हरिऔध' की 'हरिऔध सतसई' आती हैं। इनमे वर्ण्य विषय एक दम बदला है। सूर्यमल्ल मिश्रण की सतसई वीररस की रचना है। इसमे युद्ध और योद्धाओ का ओजपूर्ण वर्णन हुआ है। इसकी भाषा राजस्थानी है। शेष तीन सतसइयो मे विषय वस्तु आधुनिक है। 'किसान सतसई' मे भारत के कृषकवर्ग की महत्ता और उनकी वर्तमान अवस्था का करुण क्रन्दन है। वियोगी जी की 'वीर सतसई' मे ईश्वर गुणगान, देशप्रेम आदि का निरूपण किया गया है।

तीसरे स्तर पर वे रचनाए आती हैं जिनमे नीति और सूक्तियो की प्रधानता है। ससार के आचार विचार और कार्य-कलापो के निरीक्षण के अपने अनुभवो को रचयिताओ ने मार्मिक अभिव्यक्ति प्रदान की है। रहीम सतसई और वृन्द की 'सतसई' तथा 'यमक सतसई' इस स्तर की मुख्य रचनाए हैं।

चौथे स्तर पर 'सतसया रामायण' को रखा जा सकता है। इसमे रामकथा को सतसई-परम्परा मे ढालने का यत्न किया गया है। इसके रचयिता कीर्तसिंह है।

वर्ण्य विषय की उक्त विविधता के अतिरिक्त हिन्दी सतसइयो की सामान्य विशेषताए निम्नलिखित हैं—

(१) हिन्दी सतसइयो का नामकरण कर्ता अथवा विषय वस्तु के आधार पर हुआ है—यथा रहीम सतसई, ज्ञान सतसई, सतसैया रामायण। [प्राकृत और सस्कृत परम्परा छन्द और वज्या के आधार पर नामकरण करती है]
(२) हिन्दी सतसई एक ही कवि की रचना है। [प्राकृत मे अनेक कवियो के छन्द सगृहीत रहते हैं]
(३) हिन्दी सतसई का मुख्य छन्द दोहा रहा है। सोरठा और अन्य छन्दो का प्रयोग यदा कदा ही हुआ है।

(४) ग्रथारम्भ और ग्रथ समाप्ति की व्यवस्थित परम्परा हिन्दी सतसइयो म विकसित हुई ह ।

(५) हिन्दी सतसइया म ७०० छन्दो की परम्परा का पालन हुआ ह । परन्तु मगलाचरण और ग्रन्थ समाप्ति विषयक दोहा के कारण सतसइया की छन्द सख्या ७०० से ७८० के सीमित रही है । सख्या का विभाजन शतको मे नही हुआ है ।

(६) हिन्दी की सतसइया ब्रजी, राजस्थानी और खडी बोली तीनो म लिखी गई हैं ।

(७) हिन्दी की सतसइयो म काव्य-शिल्प की विशेष समृद्धि मिलती है ।

(८) शृङ्गार-चित्रण म प्राय राधा और कृष्ण को नायिका और नायक के रूप म लिया गया है ।

दयाराम सतसई—परम्परा मे

दयाराम सतसई को हिन्दी-जगत् के सामने लाने का श्रेय डॉ० अम्बाशकर नागरजी को है । इससे प्रथम इसका कोई विशेष उल्लेख नहा मिलता है । केवल उदयपुर के राजदरबार म बिहारी सतसई के साथ इसकी तुलना की गई है । सम्भवत अहिन्दी भाषी क्षेत्र की रचना होने के कारण हिन्दी भाषी क्षेत्रो से इसका जितना सम्पर्क होना चाहिए था उतना न हो सका । फलत हिन्दी साहित्य मे यह सतसई उपेक्षित सी रह गई है ।

हिन्दी सतसई परम्परा म दयाराम सतसई का मूल्याकन करन के लिए यह देखना आवश्यक है कि इस परम्परा की विशेषताओ का प्रस्तुत सतसई म कितना विनियोग हुआ ह ।

रूप विधान की दृष्टि से देखें तो दयाराम सतसई मे ७३१ छन्द है । कृति का नामकरण कर्त्ता के नाम पर हुआ है । आरम्भ मे मगलाचरण है, अन्त मे ग्रन्थ-समाप्ति सूचक छन्द है । सभी छन्द क्रमिवृत्त है । सतसई प्रज्या क्रमेण अठारह प्रकरणो म विभक्त है । लेकिन छन्द-सख्या अखण्ड है । वर्ण्य विषयो म भक्ति, शृगार और नीति के अतिरिक्त कठिनार्थ प्रकरण म शब्द क्रीडा, काव्यचातुर्य प्रकरण प्रहेलिका, अन्तर्लापिका बाह्यलापिका और चित्रकाव्य के नमूने दिए गए हैं । इस तरह वर्ण्य विषय का प्रस्तुत सतसई म विस्तार हुआ है और सतसई को पाडित्यपूर्ण एव चमत्कार सम्पन्न बनाने का सफल प्रयोग किया गया है । अन्य सतसइयो के मुकाबले दयाराम सतसई की यह अपनी मौलिक विशेषता है ।

रूप विधान की तरह दयाराम सतसई में भाव-विधान भी उत्कृष्ट है। इसमें कवि ने प्रतिपाद्य भक्ति और शृंगार मुख्य रूप से रहे हैं। दोनों का मूल-भाव या स्थायी भाव रति है। 'रति' के चित्रण में भावों की सुमधुर व्यंजना हुई है। सुबह में एक गोपी अपनी गौशाला की सफाई कर रही है, दूर पर कृष्ण खड़े हैं। उसे कृष्ण स्पर्श की अभिलाषा होती है, देखा इधर-उधर अभी कोई नहीं है। धीरे-धीरे कृष्ण को बुलाती है—

खरक सवारों का भरे, गोबर छुट उर छोर।
ऐहें बड को बाल तुम, ढाँपिय नन्दकिशोर॥[1]

—मैं गोशाला साफ कर रही हूँ, हाथ गोबर से भरे हैं। उर का आँचल जरा खिसक गया है। कोई बड़ा बूढ़ा यहाँ से आ निकले तो? इसलिए नन्द-किशोर! तुम अभी बालक हो, जरा इसे ठीक तरह से ढक देना।

गोपी कृष्ण का स्पर्श चाहती है। परन्तु बुलाए किस बहाने से? नाजुक बहाना ढूंढ लिया, भला इससे कोई मना कर सकता है? 'ऐहें बड' में भविष्यकाल की बात से वर्तमान एकान्त की सूचना निहित है। 'ढाँपिय' में पूरे आच्छादन की क्रिया का संकेत है। पूरे हाथ का खुले वक्ष पर सम्पूर्ण स्पर्श अभिलाषा में व्यक्त हुआ है।

कहते हैं काव्य वही अच्छा है जो विचारित रमणीय हो। संगीत और साहित्य के बीच यही अन्तर है—एक अविचारित रमणीय है, दूसरा विचारित रमणीय—

साहित्यं संगीतं च सरस्वत्यास्तनद्वयम्।
आपातमधुरमेकं अन्यदालोचनामृतम्॥

आलोचनामृत का अर्थ है जो काव्य विचार करने पर रमणीय लगे। काव्य वही है जो एकदम स्फुट न हो, जो एक साथ गूढ और अगूढ हो। दयाराम के दोहों में यह विचारित रमणीयता सहज रूप में मिलती है—

सब ठाँ गुनि के अग तें, पावें सब सम्मान।
अगुनवती उर में धरी, क्यों न होई अपमान॥[2]

नायिका इन्तजार कर रही है। नायक आता है। नायिका को लगा कि प्रिय अन्यत्र रति-क्रीडा करके आया है। वह रोष से भर जाती है। नायक को अपमान का पात्र समझने लगती है। इस रोष की विचारित रमणीयता

१ द० स० दोहा १७१।
२ द० स० दोहा १८१।

इस दोहे में हुई है—गुणी के साथ सब सम्मान पाते हैं और अवगुणी के साथ अपमान होता है। इस सामान्य कथन की तह में पहुँच कर देखें तो अन्या के साथ नायक का गाढ़-स्नेह उसके वक्ष पर पड़े हुए बिना सूत्र के हार उभरे हुए दाना से व्यंजित होता है। 'अगुनवती उर पर धरी' माला और अन्या दोनों की विच्छित्ति विधायक व्यंजना हुई है। ऐसे अनेक दोहे सतसई में मिलते हैं—देखिए—

> अँचल तन आगार बिस, चित्त रावरी ओर।
> क्यों न सकें छूटो धक तें, धुजा पवन की जोर॥[1]
> रूप भूप के राज में यह महान् अन्याय।
> नाम न लें मूढ़ कों, व्यातुर मारे जाय॥

अलंकारों का विशेषतः शब्दालंकारों का बड़ा सार्थक और हृद्य प्रयोग दयाराम ने किया है। अलंकारों का महत्व इसी में है कि वे भाव-व्यंजना में सहायक हों—यथा—

> मुकुर मुकुर सब वस्तु भई, नयन अयन किय लाल।
> दृग पसारें जित जित अली, तित-तित लखूं गुपाल॥[2]

—प्राणों का प्रिय जब आँखों में समा जाता है, तब सारा वातावरण तन्मय हो जाता है। पद पद में संगीत सुनाई देता है। एक आत्मोल्लास सर्वत्र छा जाता है। प्रस्तुत दोहे में उल्लास की इस तसवीर को अनुप्रास और यमक के द्वारा संगीत उत्पन्न कर आँखों के सामने लाया गया है।

दयाराम में भाव और कला दोनों को निखारने की अद्भुत क्षमता है। ऊपर के उदाहरणों से इसकी एक झलक मिलती है। इस पर अन्यत्र विस्तृत रूप से विचार किया गया है।

दयाराम सतसई हिन्दी सतसई-परम्परा की एक विशिष्ट कृति है जिसमें सतसई परम्परा की सामान्य विशेषताओं का पालन करते हुए कवि ने अपनी व्यापक मौलिकता का परिचय दिया है।

---

१ द० स० दोहा १२२, १२१।
२ द० स० दोहा १००।

५ ‖ दयाराम-सतसई का विषय विभाजन

दयाराम ने विक्रम संवत् १८७२ के भाद्रपद मास की राधा अष्टमी के पुण्य-पर्व के दिन चाणोद ग्राम में नर्मदा के पवित्र तट पर अपने जीवन के ३९वें वर्ष में सतसैया की रचना को अंतिम रूप दिया—

संवत अष्टादस बहुतरा, शुभ्र पक्ष नभ मास।
तिथि श्री राधा अष्टमी, वार गुरु शुभ रास॥
तादिन संपूरन भयो, सतसैया शुभ ग्रंथ॥[1]

कवि को अपनी इस कृति पर बड़ा प्यार है, बहुत गौरव है। उसने ज्ञान, भक्ति, विवेक और रसिकता में पगे प्रेमादिक प्रस्तावों पर परम्परा का पालन करते हुए, बड़े मनोयोग से लिखा है। 'पिंगल शास्त्र' के अनुसार छन्द रचना करने का प्रयत्न किया है—

ज्ञान भक्ति सुविवेक युत, प्रेमादिक प्रस्ताव।
युव ग्रंथ सम्मत ललित, नागरता हरि भाव॥
पिंगल पद्धति देखिके, रचना रचि अबोध।
तदपि होय कछु समझियो, हरिगुन जिन धरि दोष॥[2]

सतसैया की रचना कवि ने परोपकार के लिए की है। कवि का विश्वास है कि सतसैया के पाठक को सुमति मिलेगी और कृष्णपद की भी प्राप्ति होगी। कवि का उद्देश्य केवल कृष्ण की प्रीति ही रही है। किसी भूप के कृपा कटाक्ष की प्राप्ति के लिए सतसैया का निर्माण उसने नहीं किया है—

पुरुषोत्तम गोपीश श्री, कृष्ण मनोहर रूप।
तव प्रीत्यर्थ सुग्रंथ यह, नहिं रिझवन को भूप॥[3]

---

१ सतसई—७२६, ७२७।
२ वही ७२९, ७३०।
३ वही ७२८।

कवि ने 'सतसया' मे विषय-विभाजन अपने ढग से १५ प्रकरणो से किया है। प्रकरण इस प्रकार हैं—

१ मगलाचरण	२ भगवत्स्तुति विज्ञप्ति
३ प्रेम वर्णन	४ नायिका वर्णन
५ रूप वर्णन	६ सग वर्णन
७ भक्ति प्रकरण	८ वाद प्रकरण
९ नाम माहात्म्य प्रकरण	१० आश्रय-प्रकरण
११ विवेक प्रकरण	१२ शिक्षा विवेक प्रकरण
१३ प्रस्ताव प्रकरण	१४ कठिन्यार्थ प्रकरण
१५ काव्य चातुय प्रकरण	

इन प्रकरणो मे पारस्परिक क्रम योग नही है। एक ही विषय को अनेक प्रकरणो मे अलग-अलग शीर्षक स रखा गया है। मगलाचरण के लिए प्रकरण बनाया गया है, ग्रन्थ समाप्ति मूलक कवि परिचय को प्रकरण के बाहर कर दिया गया है। इसलिए इन सभी प्रकरणो को सुसगत और क्रमबद्ध करने के लिए समस्त रचना को पाच विभागो म विभक्त किया जा सकता है—

१ मंगलाचरण	प्रकरण-१	५ दोहे
२ भक्ति-काव्य	भगवत् स्तुति, भक्ति प्रकरण, वाद प्रकरण नाम माहात्म्य प्रकरण, आश्रय प्रकरण, प्रस्ताव प्रकरण कुल ६ प्रकरण	१६७ दोहे
३ रीति-काव्य	प्रेम वर्णन, नायिका वर्णन, रूप वर्णन कठिन्यार्थ प्रकरण, काव्य चातुय प्रकरण कुल ५ प्रकरण	२७८ दोहे
४ नीति काव्य	विवक शिक्षा, शिक्षा विवेक, सग वर्णन कुल ३ प्रकरण	२७१ दोहे
५ ग्रन्थ समाप्ति कवि-परिचय		१० दोहे
		७३१

इस प्रकार कुल ७३१ छन्दो म ग्रन्थ की रचना हुई है। इस ग्रन्थ को गुजराती भाषी जनता को समझाने के लिए कवि ने स्वय गद्य म इसकी टीका प्रस्तुत की है।

यह ग्रन्थ लोकप्रिय रहा होगा, राज-दरबारों मे भी इस सम्मान मिला होगा। गुजराती के एक साहित्यकार श्री आर० सी० मोदी ने अपने ग्रन्थ 'दयाराम' मे एक प्रसग का वर्णन करते हुए लिखा है—"एक बार उदयपुर के

दरबार में एक चारण ने एक दोहा 'दयाराम सतसैया' से और एक दोहा बिहारी सतसई से गाकर सुनाया।" सुनकर उदयपुर के नरेश ने चारण से पूछा—"इन दोनों में से कौन-सा अच्छा है ?" चारण ने कहा—"दोनों अच्छे हैं महाराज !" महाराज प्रसन्न हुए और कहा—"तुम्हारा कहना ठीक है, परन्तु दयाराम की सतसैया बिहारी की सतसई से श्रेष्ठ है क्योंकि बिहारी ने लौकिक शृङ्गार की अभिव्यक्ति की है जबकि दयाराम ने अलौकिक शृङ्गार प्रकट हुआ है।"[1]

दयाराम की सतसैया में मंगलाचरण और ग्रन्थ-समाप्ति के दोहों को छोड़ दिया जाय तो सारी सतसई में भक्ति-काव्य, रीति-काव्य और नीति-काव्य के सुन्दर, रुचिर दोहे ही इसकी श्रेष्ठता के समय द्योतक हैं। अब इन तीनों पर संक्षिप्त रूप से विचार किया जाय।

भक्ति काव्य—जैसा ऊपर बताया गया है कि कुल १६७ दोहों में भक्ति काव्य का समावेश हुआ है। इनमें भगवान् श्रीकृष्ण और उनकी प्रिया राधा की स्तुति प्रार्थना की गई है। शुद्धाद्वैत की विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है। पुष्टिमार्ग और शुद्धाद्वैत के आधार पर भक्ति का निरूपण किया गया है। भक्ति में भी प्रेमलक्षणा भक्ति को उत्कृष्ट बताया गया है। ज्ञान से भक्ति को वरीयता प्रदान की गई है। परमात्मा को साकार, सगुण सिद्ध किया गया है। भगवान के नाम की महिमा गाई गई है। भगवान के आश्रय को ही परम आश्रय बताया गया है। भगवान् और भक्त के आपसी सम्बन्धों को प्रकट किया गया है। भगवान् पर सारी चिन्ताओं को टिकाकर भक्त को सांसारिक बन्धनों से मुक्त रहने की सलाह दी गई है। देखिए—

निराकार सबकों कहैं, पै प्रभु हैं साकार।
जो अवयव नहिं ईस, तहाँ कहाँ संसार।।
डरें न भी हरि भाउसों, एसो अब नहिं कोय।
ऐसो वस्तु न होय जो, जब निमरन नहिं होय।।
चिंता तू चित क्यों करें, विश्व भर प्रतिपाल।
सक्कर सक्करखोर को, दधि मधि देत दयाल।।

रीति काव्य—इसके अन्तर्गत प्रेम वर्णन, नायिका भेद, रूप वर्णन, विरह वर्णन, मान वर्णन, दूति वर्णन, काव्य परिभाषा और काव्य भाषा

---

१ दयाराम सतसई सं० डॉ० म० शं० नागर से उद्धृत पृ० १६।

विषयक विधान, चोर कवि, शब्द क्रीडा एव चित्र काव्य का समावेश होता है। वास्तव मे यहाँ दयाराम के पाण्डित्य, काव्यशास्त्र और विविध विषयो के ज्ञान का चमत्कार दिखाई देता है। उनकी काव्यकला का चरम विकास भी यहाँ दृष्टि-गोचर होता है। सतसई के सर्वाधिक दोहे अर्थात् २७८ दोहे रीतिकाव्य विषयक हैं। कुछ उदाहरण प्रस्तुत है—

पनघट पनघट जाय पन, घट पनघट कों ध्यान।
पनघट लाल चढाय दें, अलि पनघट सुखखोन॥
मुकर मुकर सब वस्तु भई, नयन अयन किय लाल।
द्रग पसाए जित जित अली, तित तित लखु गुपाल॥
क क क क क क कि, ख ख ख ख खाल।
गो गो गा गे गात गो, लखो लाल लें लाल॥

नीति-काव्य—सतसई मे २७१ दोहे नीति-विषयक है। इसम जगत् की रीति-नीतियो को कवि ने अपने अनुभवो की आँच पर तपाकर जाँचा है। सगति, सन्त, गुरु, सज्जन-दुर्जन, प्रशसक-निन्दक, पाप-पुण्य, छोटा-बडा, मन और मनोवृत्तियाँ, त्याज और ग्राह्य आदि अनेक विषयो की व्याख्याएँ, परिभाषाएँ और स्पष्टताएँ प्रस्तुत की गई है। इनमे दयाराम के विशाल अनुभव-पटल का परिचय मिलता है। मानव-जीवन का ऐसा कोई क्षेत्र शेष नही रहा है जिस पर दयाराम ने प्रकाश नही डाला हो। सस्कृत म भर्तृहरि, हिंदी मे तुलसी, रहीम, बिहारी, वृंद ने अपनी-अपनी सूक्तियो मे जीवन के अनुभवो पर सटीक अभिव्यक्तियाँ प्रकट की हैं। आज भी ये सूक्तियाँ लोगो के मुँह पर एकाएक आ जाती हैं। दयाराम की ये सूक्तियाँ भी इसी कोटि की हैं।

सार-असार न समुझ जिहि, गुड व खोल इकतोल।
त्हाँ सबको सुनिचौं चुनि, उचित न बदियो बोल॥
बडे नाम तें का भयो काज बडो नहि होत।
कहें अरक सब आंक कू पें नहि होत उदोत॥
प्रीति ह्याँ नीती नहीं, नीती ह्याँ नहि प्रीत।
स्यानप अरु मद छाक जिमि, नहि इकत्र कहुँ रीत॥

इस प्रकार दयाराम सतसई मे भक्ति, रीति और नीति काव्य का बडा सुभग समन्वय हुआ है।

६ ‖ भक्ति भावना

मध्ययुग का भक्ति-आन्दोलन १८वीं शती के अन्त तक विभिन्न वैष्णव सम्प्रदायों में बँट चुका था। गुजरात में स्वयं वल्लभाचार्य एवं उनके सुपुत्र सम्प्रदाय प्रचार के लिए यात्राएँ कर चुके थे। गुजरात से अनेक वैष्णव भक्त मण्डलियाँ ब्रजमण्डल और श्रीनाथजी की यात्राएँ नियमित रूप से करती थीं। डाकोर वैष्णवों का मुख्य केन्द्र बन गया था। 'ब्रजराज' और ब्रजभाषा के प्रति अनन्य प्रेम गुजरात में विशेषतया प्रकट हुआ और गुजराती के सभी कवियों ने न्यूनाधिक रूप में ब्रजभाषा में अपने भावों को व्यक्त करने का प्रयास किया है।

दयाराम में भक्ति और भाषा का यह प्रेम सर्वोत्कृष्ट रूप में प्रकट हुआ है। दयाराम तो बचपन से ही धार्मिक वातावरण में पले थे। श्री इच्छाराम भट्ट जी की प्रेरणा से उन्होंने कृष्ण-धामों की यात्राएँ सम्पन्न कीं। श्रीनाथद्वारा में २५-२७ वर्ष की उम्र में उन्होंने गोस्वामी श्रीवल्लभ जी महाराज से 'ब्रह्म-सम्बन्ध' दीक्षा ग्रहण की।[१] इस दीक्षा में दीक्षित व्यक्ति अपना सब कुछ समर्पित कर भगवान की सेवा में लीन हो जाता है। 'ब्रह्म सम्बन्ध' दीक्षा के दो वर्ष बाद दयाराम ने 'मानी मरजाद' भी ग्रहण की। इसमें भक्त स्वयं भोजनादि तैयार कर ठाकुर जी को भोग लगाने के पश्चात् ही उस प्रसाद के रूप में लेता है। दयाराम ने इसका अन्त तक पालन किया।

दयाराम की भक्ति पर दृढ़ आस्था थी और शंकराचार्य के अद्वैत के स्थान पर वल्लभाचार्य के शुद्धाद्वैत के प्रबल समर्थक थे। दयाराम ने अपनी गुजराती और हिन्दी कृतियों में शुद्धाद्वैत और पुष्टिमार्ग का जोरदार समर्थन किया है और साथ ही साथ अन्य दार्शनिक मतों का खण्डन भी किया है। इसीलिए जहाँ सूरदास को 'पुष्टिपोत' कहा गया है वहाँ दयाराम को 'पुष्टि-

---

१ श्री वल्लभजी कचनावस, प्रथम सम्प्रदायसार।
सेव्य श्री मदनमोहन हैं, दयाराम उरहार॥ —स० काव्यमाला १

पयोधि' माना गया है। 'सतसई' में व्यक्त उनके दार्शनिक और भक्ति-विषय विचारों पर अब दृष्टिपात करें।

१ सैद्धान्तिक मत—

भगवत्प्राप्ति के अनेक मार्ग हैं। ज्ञान, भक्ति, कर्म और योग के द्वारा मनुष्य अपना पारमार्थिक कल्याण प्राप्त कर सकता है। शंकराचार्य ने ज्ञान मार्ग पर जोर दिया। ज्ञान में ही मुक्ति सम्भव है। परवर्ती वैष्णव आचार्यों ने ज्ञान के स्थान पर भक्ति की पुनः प्रतिष्ठा की। ईश्वर में सम्पूर्ण रूप में अनुरक्ति ही भक्ति है। पूर्ण पुरुषोत्तम के प्रति सर्वात्मना समर्पित होना ही जीव का धर्म है, उसकी आनन्द-साधना है। इसलिए भक्तिमार्ग के प्रस्तोता आचार्यों ने शंकर के अद्वैत का खण्डन किया और उनके मायावाद को स्वीकार्य नहीं माना। शंकर ने पारमार्थिक सत्ता के रूप में निर्गुण ब्रह्म को माना है। जीव और ब्रह्म में नितान्त अभिन्नता की पुष्टि की है। इसी कारण इनका मत अद्वैतवाद के नाम से प्रचलित हुआ है। ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है और जीव ही ब्रह्म है। माया के कारण ही यह सारा प्रपंच है। शुद्धाद्वैतवादियों ने शंकर के केवलाद्वैत की जगह पर शुद्धाद्वैत की प्रतिष्ठा की और ज्ञान की जगह पर भक्ति को श्रेष्ठ घोषित किया।

परब्रह्म—

शंकराचार्य ने इसकी पारमार्थिक सत्ता मानी है। उन्होंने इसे निर्गुण, निराकार बतलाया है। माया से शबलित होने पर इसे 'ईश्वर' भी कहा है। यही इस जगत् का कर्ता-धर्ता है परन्तु निर्गुण ब्रह्म माया के सम्बन्ध से नितान्त शून्य है। वल्लभाचार्य ने इन धारणाओं का खण्डन किया है। उनके मत में ब्रह्म सत्, चित् और आनन्द गुणों से युक्त है। 'वह व्यापक है। सर्वशक्तिमान है। सर्वतन्त्र स्वतन्त्र है। वह सर्वज्ञ है प्राकृत गुणों से रहित है।

सच्चिदानन्दरूपं तु ब्रह्म व्यापकमव्ययम्।
सर्वशक्ति स्वतन्त्रं च सर्वज्ञं गुणवर्जितम्॥'[१]

यह ब्रह्म माया से अलिप्त है। इसलिए शुद्ध है। यह अनादि है, अद्वैत है। अखण्ड है। यह आधिदैविक, आध्यात्मिक और आधिभौतिक रूप से तीन प्रकार का है। आधिदैविक रूप ही परब्रह्म है। यह अपनी आत्ममाया से सदा आवृत रहता है। यह क्षर से अतीत और अक्षर से उत्तम होने के कारण पुरुषोत्तम कहलाता है। गीता में भी इसका समर्थन है—

१ तत्त्वार्थ दीपिका ६५ पृ०/२४।

यस्मात्क्षरमतीतोऽहम्, अक्षरादपि चोत्तम ।
अतोऽस्मि लोके वेदे च, प्रथित पुरुषोत्तम ॥[1]

यह पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण हैं । कृष्ण ही परब्रह्म है कृ—सत्ता वाचक शब्द है और ण—आनन्दवाचक जहाँ आनन्द की सत्ता अबाधित रहती हो वह कृष्ण है । कृष्ण सदानन्द हैं । शुद्धाद्वैत मे कृष्ण की सर्वोपरि सत्ता है । इससे कम आनन्द वाला स्वरूप अक्षर ब्रह्म है ।

पर ब्रह्म तु कृष्णो हि सच्चिदानन्दक बृहत् ।
द्विरूप तद्धि सव स्यादेक तस्माद्विलक्षणम् ॥[2]

परब्रह्म कृष्ण म सत्, चित् और आनन्द तीनो गुण पूर्णरूप म विद्यमान है । इससे न्यून मात्रा म जिसम है वह अक्षर ब्रह्म है । इसके भी दो स्वरूप हैं—(१) जगत् ब्रह्म (२) अक्षर ब्रह्म । यह अक्षर ब्रह्म ही परब्रह्म का धाम है । अक्षर ब्रह्म अपने आधि-भौतिक रूप म जगत स्वरूप है, आध्यात्मिक रूप म अक्षर ब्रह्म है । भगवान् को जब रमण करने की इच्छा होती है, तब व अपने गुणो म से एक या दो का आविर्भाव करके जीव और जड की उत्पत्ति करते हैं । शकर की माया के स्थान पर 'रमणेच्छा' की द्वारा जड चेतन का आविर्भाव और तिरोभाव का सिद्धान्त विलक्षण है ।

दयाराम ने भी परब्रह्म को निर्गुण और अक्षरातीत माना है । हरि है, ईश्वर है । वह सर्व शक्तिमान है । सर्वत्र व्याप्त है ।[3] दयाराम कहते हैं—भगवान सृष्टि कर्ता भी है, अकर्ता भी ह । वह अकल्प्य है, मन और वाणी की पहुँच से परे है । ईश्वर तो सगुण ही है क्योकि ससार का कर्ता है—

निराकार सबको कहे, ये प्रभु हैं साकार ।
जो अवयव नहि ईस, तहो कहा ससार ॥
हरि मे सब जक्त है, जग में हरि यों मानि शुक मानि ।
जलनिधि मे सब बीचि ज्यो, बीचि जलनिधि जानि ॥[4]

---

१ गीता १५/१८ ।
२ श्री सिद्धान्त मुक्तावली ३
३ श्रुतिनेति मन गो अगम, निगुन अक्षरातीन ।
सो श्री गोपीनाथ को, अभिवादन अगनीत ॥
× × ×
सर्वेश्वर सर्वात्म प्रभु, हरि ईश्वर भगवान ॥ द० स० ३, ४
४ दयाराम सतसई दो० ३३०, ६८७ ।

जीव—

परब्रह्म की जब रमणेच्छा होती है तब वह अपनी शक्ति से आनन्दांश का तिरोधान कर अपने चिदंश से जीव रूप में प्रकट होता है। इस तरह जीव आनन्दांश तिरोहित परब्रह्म है। वह परब्रह्म का एक अंश है। ब्रह्म और जीव में अंशांशिभाव संबंध है। शंकरमत में ब्रह्म और जीव को अभिन्न बताया गया है। शुद्धाद्वैत में इसका खण्डन करता है। दयाराम भी कहते है—'ब्रह्म से जीव बना है फिर जीव का ब्रह्म हो ही नहीं सकता। दूध से दही बनता है, पर दही से फिर से दूध नहीं बन सकता है—

भयो ब्रह्म ते जीव फिरि, ब्रह्म होय कहि मुग्ध।
ज्यौं दधि पयसों होत सो, बहुरि बनें नहिं दुग्ध ॥[1]

जीव अणु है। असंख्य है। नित्य है। सनातन है। शंकर जीवात्मा को ज्ञान स्वरूप मानते हैं। शुद्धाद्वैत में उसे ज्ञाता माना है। जीव अविद्या के संसर्ग से बंधन में पड़ता है और विद्या और भक्ति के द्वारा अपने खोए हुए गुण को प्राप्त करके मूल में अवस्थित हो जाता है। इस अवस्था में वह मुक्त कहलाता है।

जीव के तीन प्रकार होते हैं—(१) शुद्ध जीव, (२) मुक्त (३) संसारी। केवल आनन्दांश के तिरोहित हो जाने पर वह शुद्ध रहता है। अविद्या के सम्पर्क से वह संसारी बन जाता है और पुनः आनन्द की प्राप्ति से वह मुक्त कोटि में पहुँच जाता है। संसारी जीव के भी दो स्तर होते हैं—दैवी और आसुरी। दैवी जीव हरिभक्त होते हैं और आसुरी हरि विमुख। दैवी जीव भी दो प्रकार के होते हैं—मर्यादी जीव, पुष्टि जीव।[2] पुष्टि जीव के भी मिश्र पुष्टि और शुद्ध पुष्टि के भेद से दो प्रकार हैं। इनमें "शुद्धा प्रेम्णाति दुर्लभा" ईश्वर प्रेम से सराबोर जीव ही शुद्ध पुष्टि जीव हैं। वह भगवान के प्रेम में ही मग्न रहता है। भगवान् का इसी पर अनुग्रह होता है।

दयाराम ने भी जीव को परमात्मा का अंश कहा है और परमात्मा से ही उसकी उत्पत्ति मानी है—

---

१ ब० स० ३१५।

२ 'तावहं द्विपनो' वाक्यात् भिन्ना जीवाः प्रवाहिणः।
अतः एवेतरौ भिन्नो सान्तौ मोक्ष प्रवेशतः ॥

—पुष्टिप्रवाह मर्यादा भेद ११

जीव जश हों आपकौं, सौंपयौं करन कुफेल
तात तजोंगे को नहीं, डारौं हठि निज गेल ॥[1]

जगत्—

जगत् ब्रह्म के सदश का परिणाम है। इसलिए जगत् अनादि और सत्य है। इसका केवल आविर्भाव और तिरोभाव होता है। इस जगत् में ही एक दूसरी सृष्टि है, जिसे संसार कहते हैं। अविद्या से ग्रस्त जीव-सृष्टि ही संसार है। इसलिए यह कल्पित और ममतामयी है। पंचपर्वा अविद्या से निःसृत होने के कारण मिथ्या है। विद्या के द्वारा संसार का नाश हो जाता है, उसका अस्तित्व मिट जाता है। संसार नाशवान् है, जगत् अविनाशी। दयाराम ने जगत् को ब्रह्म के सदश से प्रकट माना है। अद्वैतवाद प्रतिपादित जगत् के मिथ्यात्व का उन्होंने खण्डन किया है। दयाराम सतसई में जगत् के विषय में कोई खास सैद्धान्तिक बात नहीं कही गई है। परन्तु उनके अन्य ग्रन्थों में विशेषतया गुजराती में रचित 'रसिकवल्लभ' में शुद्धाद्वैत मत के अनुसार ही जगत् का प्रतिपादन किया है।

माया—

शुद्धाद्वैत के अनुसार माया ब्रह्म की शक्ति है। इसके दो प्रकार हैं—

विद्याविद्ये हरे शक्ति मायर्यव विनिर्मित, ।
ते जीवस्यैव ना मस्य तु स्विश्व चाप्यनीश्वता ।[2]

माया की दो शक्तियाँ अथवा रूप हैं—(१) विद्या और (२) अविद्या। विद्या शक्ति के द्वारा ब्रह्म सम्पूर्ण जगत् तत्व का निर्माण करता है और अविद्या शक्ति से जीव के संसार का निर्माण होता है। भगवत्-अनुग्रह से अविद्या का नाश होता है।

दयाराम ने सतसई में कहा है—"ईश्वर ने जीव को भव-जलनिधि में डाल दिया है। माया के पत्थर से उसके पाँव बाँध दिए हैं। नाम रूपी लकड़ी उसके हाथ थमा दी है और तब स्थिति ऐसी हो गई कि जीव से न तो तरा जा रहा है और न ही डूबा जा रहा है।

---

१ द० स० ६५६।

२ तत्वार्थ दीप निबन्ध शा० प्र० कारिका ३१।

डार्यों मो कों चलवि हरि, अजा-पल बधि पाय ।
ठाक कर दिय नाउ निज, तर्यों न बूर्यों जाय ॥[1]

यह माया बड़ी बलवती है। क्योंकि इसे जानबूझकर ईश्वर ने जीव के मत्थे मढ दिया है। जीव का मन उसका दास बन गया है। माया पर जीव का वश नहीं चलता है। माया प्रभु की रचना है। वह दूसरों को फँसाती है ठीक मकड़ी की तरह। मकड़ी जाल बुनती है, उसमें दूसरों को फँसाती है। स्वय नहीं फँसती है। ईश्वर की कृपा से ही इससे दूर रहा जा सकता है।

२ पुष्टि मार्ग भक्ति और सेवा—

भगवान् को प्राप्त करने के अनेक मार्ग हैं। अनेक साधन हैं। इन सब साधनों में भक्ति श्रेष्ठ है। प्रभु की कृपा-प्राप्ति का द्वार ही भक्ति है। ईश्वर के प्रति प्रेम रखना ही भक्ति है। सब ईश्वर की प्रजा हैं, उसका सब पर समान प्रेम है। फिर भी अपने चाहने वालों पर, शरण में आने वालों पर, अनन्य निष्ठा रखने वालो पर उसका अधिक प्रेम रहता है। भगवान को चाहना, उस पर विश्वास करना, उसके क्रोध और दया पर समान भाव से श्रद्धा रखना, उसके अतिरिक्त अन्य किसी पर आश्रय न रखना भक्ति के प्रमुख अंग हैं। इनसे भगवत्-प्रेम की वृद्धि होती है। दयाराम ने इसी का प्रतिपादन किया है—

सब जग पुरुषोत्तम प्रजा, सब पै प्रेम समान ।
अधिकों लगें प्रपन्न पैं, कल्प द्रुम ज्यों दान ॥[2]

भक्ति सफला है। उसका प्रभाव अनन्त है। उसके प्रताप से रावण का उद्धार हुआ। क्षत्रियकुमार ध्रुव के चारों और ब्राह्मण कुमार परिक्रमा दे रहे हैं—यह भक्ति का ही परिणाम है। शबरी के चरणोदक के लिए ऋषि-मुनि लालायित रहते हैं। दुर्वासा ऋषि को अम्बरिष के सामने मुँह की खानी पड़ी—यह भक्ति का ही फल है। भक्ति का बड़ा प्रताप है, भक्तों के सामने सब नत हैं—

---

१ द० स० ४३, २८।
२ द० स० ५२।

धाता के गुनु सप्त ऋषि, ध्रुव छत्री के वास ।
देवें याहि परिक्रमा, भक्ति बड़ गोपाल ॥[1]

भक्ति ज्ञान से भी बड़ी है। ज्ञान से मुक्ति मिलती है, भक्ति से स्वय भगवान्। ज्ञान, योग और वैराग्य माया की लपेट म आ जाते हैं। परन्तु भक्ति को वह नही फँसा सकती है। वास्तव मे दयाराम कहते हैं ज्ञानी तो वह रेफ (र) है जो अपने वर्ण मे लगकर अधोगामी बन जाता है। परन्तु भक्ति वह रेफ है जो अपने वर्ण मे मिले बिना ऊर्ध्वगति (र) प्राप्त कर लेता है।

ज्ञानी भक्त सों क्यों लरत, बिना किये अनुमान ।
कृष्ण आप फल भक्ति दें, याहि मुक्ति कों दान ॥[2]

भक्ति कर्म और मुक्ति से भी बड़ी है। कृष्ण के भजन बिना सब कम भ्रष्ट है, फलहीन हैं। भक्ति की छाया पड़ते ही ससार के जजाल से मुक्ति मिल जाती है।

हरि भगती ही छाँहि सों, मुकति मुकति बल पाय ।
हरि भगती ही छाँहि सो मुकति मुकति बल पाय ॥
कृष्ण भजन बिन कर्म सब, तमक भ्रष्ट फलहीन ।
अफल सफल भ्रम धुधरता, जस मृगगि मलमान ॥[3]

प्रेम भक्ति ही सबसे बड़ी भक्ति है। हरि राग द्वारा ही साध्य है। कृष्ण के प्रति जो स्नेह वही वास्तव मे स्नेह है। उसके अभाव मे सब व्यर्थ है—

स्नेह स्नेह सो कृष्ण बिनु, गुनी गुनी सम जानि ।
हरख हरख सों ही समुझि, शोख शोप परमानि ॥[4]

भगवान जिसको चाहता है उसी को वह प्राप्त होता है। भगवान् के द्वारा चाहने का चुनाव ही पुष्टि है। पुष्टि मार्ग का अथ है—भगवान् की अनुकम्पा या दया का मार्ग।

भगवान् मे परम अनुरक्ति ही भक्ति है। स्वय महाप्रभु वल्लभाचार्य जी ने कहा है—

---

१ द० स० ३०८।

२ द० स० ३११।

३ द० स० ५६४, ३२७।

४ द० स० ६१६।

महात्म्य ज्ञान पूर्वस्तु सुदृढ सर्वतोऽधिक ।
स्नेहो भक्तिरिति प्रोक्त तया मुक्तिर्न चान्यथा ॥[1]

श्रीमद्भागवत में पुष्टि को 'श्रीकृष्णानुग्रह रूपा' बताया गया है। इस अनुग्रह पुष्टिमार्ग में नियामक है—'अनुग्रह पुष्टिमार्गे नियामक —इति स्थिति'। वल्लभाचार्य के मत के प्रसिद्ध व्याख्याता श्री हरिराय जी ने पुष्टि मार्ग का लक्षण देते हुए कहा है—

सर्वसाधन राहित्य, फलाप्तौ यत्र साधनम् ।
फल वा साधनं यत्र, पुष्टि मार्ग स कथ्यते ॥

जिस मार्ग में लौकिक तथा अलौकिक सकाम तथा निष्काम सब साधनों का अभाव ही श्रीकृष्ण की स्वरूप प्राप्ति में साधन-रूप है, अथवा जहाँ जो फल है वही साधन है, उसे पुष्टि मार्ग कहते हैं। केवल भगवान् के अनुग्रह से उपलब्ध भक्ति ही पुष्टि भक्ति ठहरती है। साधन रूपा और साध्य रूपा इसके दो भेद हैं। साधन रूपा के अन्तर्गत वैदिक भक्ति अथवा नवधा भक्ति आती है। साध्यरूपा भक्ति ही प्रेम रूपा, परा भक्ति, माधुर्य भक्ति, प्रेम-लक्षणा भक्ति के नाम से कही जाती है। नारद और शाण्डिल्य सदृश भक्ति पथ के आचार्यों ने इसे प्रधानता दी है। नारद-भक्ति सूत्र में—"सा तु अस्मिन् प्रेमस्वरूपा अमृतस्वरूपा च"—कहा गया है। शाण्डिल्य ने भक्ति को "सा तु परानुरक्ति ईश्वरे" कहा है। सर्वात्मना ईश्वर में विश्वास रखकर समर्पण कर देना ही प्रेम-लक्षणा भक्ति का चरम ध्येय है। सब कुछ छोड़कर प्रभु की शरण में नत हो जाना ही साध्य है। गीता में स्वयं श्रीकृष्ण ने कहा है—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यः मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥[2]

भगवान् की सेवा करना भक्त का धर्म है। पुष्टिजीवों की सृष्टि भगवत्स्वरूप की सेवा के लिए ही की गई है—

तस्मात् जीवा पुष्टिमार्गे भिन्ना एव न संशयः ।
भगवद्रूप सेवार्थं तत् सृष्टि नान्यथा भवेत् ॥[3]

---

१ तत्वार्थ दीपिका शा० प्र० कारिका।
२ गीता १८/६६।
३ पुष्टि प्रवाह मर्यादा भेद १२।

सप्त श्रुति, ध्रुव छत्रो के वास ।
परिक्रमा, भक्ति, बड़ गोपास ॥[1]

ी है । ज्ञान से मुक्ति मिलती है, भक्ति से

धाता के सु वैराग्य माया की लपेट मे आ जाते हैं ।

वेवें याहि क्ती है । वास्तव मे दयाराम कहते हैं ज्ञानी

भक्ति ज्ञान से भी ब मे लगकर अधोगामी बन जाता है ।

भगवान् । ज्ञान, योग औ मिले बिना ऊर्ध्वगति (द) प्राप्त कर लेता

भक्ति को वह नही फंसा स नों क्यों लरत, बिना किये अनुमान ।

रेफ (द) है जो अपने वर्ण कि भक्ति के, वाहि मुक्ति की दान ॥[2]

वह रेफ है जो अपने वर्ण से भी बडी है । कृष्ण के भजन ।

स्वामी भक्त क्ति की छाया पडते ही ससार के

कृष्ण आप फ

चाहि सों, मुकति मुकति बत

भक्ति कर्म और मुक्ति चाहि सो मुकति मुकति बत

भ्रष्ट है, फलहीन हैं । भ कर्म सब, तनक पाप्ठ

मिल जाती है । भम सुधरता, अस मृगति

हरि भगती ही

हरि भगती ही बडी भक्ति है । हरि राग

कृष्ण भजन वही वास्तव मे स्नेह है ।

सफल सफल कृष्ण बिनु गुनी गुनी

प्रेम भक्ति ही सबसे ही सद्गुनि, शोक कोप

कृष्ण के प्रति जो स्नेह ता है उसी को वह प्राप्त

व्यय है— है । पुष्टि मार्ग का अर्थ है

स्नेह स्नेह सो

हरख हरख सो क्ति ही भक्ति है । स्वय

भगवान जिसको चाह

चाहने का चुनाव ही पुष्टि

या दया का माग ।

भगवान् म परम अनुर

कहा है—

१ द० स० ३०८ ।

२ द० स० ३११ ।

३ द० स० ५६४, ३२७

४ द० स० ६१६ ।

भक्ति की पराकाष्ठा तब आती है जब भक्त सब कुछ छोडकर भगवान् पर सम्पूर्ण रूप के अवलम्बित हो जाता है। यह उसकी अनन्य भक्ति है। उसका एक मात्र आश्रय प्रभु का आधार है। उसका सारा जीवन प्रभुमय बन जाता है। भगवान् रूठें तो भी ठीक, स तुष्ट हो तो भी ठीक। तारेंगे तो भी ठीक, मारेंगे तो भी ठीक—

रूठोंगे प्रभु रूठिहौ, तोहू कछू न सोच।
क्रोध तिहारौं सुहृ हमें, देगा फल वर मोच॥[1]

भक्त इष्टमय हो जाता है। प्रभु के समीप पहुँचना चाहता है। प्रभु से आग्रह भरी प्रार्थना करता है, अपनी सम्पूर्ण सत्ता प्रभु म विलीन कर देता है—

देवो नाहिं न देव को, निज औतार हु कौन।
राजहु राधाकृष्ण जुग, निति मो सिर उरमान॥
मति धरम रति कृष्ण मम, गति वृन्दावन धाम।
कृति सेवा श्रीनाथ कब, होहे रट हरि नाम॥[2]

इसके पश्चात् वह स्थिति आती है जब भक्त सर्वात्मा अपने आपको प्रभु को समर्पित कर देता है। शास्त्रीय भाषा में यही प्रपत्ति है। प्रपत्ति ही शरणागति है। प्रपत्ति के छ अंग हैं—

अनुकूलस्य सकल्प प्रतिकूल विसर्जनम्।
करिष्यतीति विश्वास० भर्तृत्वे वरण तथा।
आत्मनिक्षेपकार्पण्ये षड्विधा शरणागति॥

भगवान् जो चाहे सो करे, भक्त को सब कुछ स्वीकार है। अत शिकवा-शिकायत का कोई प्रश्न ही नहीं रहता। शरण में भक्त आ पड़ा है, अब भगवान् को जो उचित लगे वह करें। दयाराम कहते हैं—

जानू कछु न अविधि बिधि, सरन पर्यो व्रजराय।
आछो लगें जु आपकूँ, सो कृत लेहु कराय॥
तासों मारो हो धनी, ताको मो नहि सोच।
पैं कहियें न असक्य कों, बूयों तेरे तोच॥[3]

---

१ द० स० दो० ६।
२ वही दो० २२।
३ वही दो० ४१, ३७।

सेवा ही पुष्टिमार्ग में प्रधान है। सेवा तीन प्रकार से की जा सकती है—(१) तनुजा, (२) वित्तजा, (३) मानसी। उपवास, व्रत और तीर्थयात्रा आदि तनुजा में आते हैं। धन के द्वारा मन्दिर तथा मूर्ति का निर्माण कराना वित्तजा के अन्तर्गत आते हैं। मन में श्रीकृष्ण की आराधना करना मानसी सेवा है। इसी से संसार के दुःख से निवृत्ति होती है और ब्रह्म का बोध होता है। सेवा में आत्मसमर्पण, आत्म-निवेदन और विग्रह पूजा का समावेश हो जाता है। स्मरण, कीर्तन और श्रवण तथा सेवा के द्वारा भगवान् में आसक्ति बढ़ जाती है। इसी को निरोध कहते हैं—प्रपंच विस्मृतिपूर्वक भगवदासक्ति। निरोध का अर्थ है भगवन्मय स्थिति। दूसरी बातों में जरा भी मन नहीं रखना। केवल प्रभु का ही आठों प्रहर ध्यान रखना निरोध है। इसके भी चार स्तर होते हैं—१ प्रेम २ आसक्ति ३ व्यसन ४ तन्मयता।

दयाराम पुष्टिमार्गी थे। उनकी सतसई में भक्ति भावना बड़ी निष्ठा से निरूपित हुई है। दयाराम भगवान् की कृपा पर अधिक जोर देते हैं। भगवान् की कृपा प्राप्त करना ही जीव का लक्ष्य है। भगवत्कृपा पर ही सब कुछ अवलम्बित है—

सब सनमुख सब जानियें, जबें कृष्ण सनमुख।
यें विमुख भी होत है, अशुभ, दोष सब दुख ॥[१]

ईश्वर की कृपा सहज ही प्राप्त होती है। सारे संसार में उसका प्रसार है। कर्म से ही सब कुछ नहीं होता है, ईश्वर की दया भी चाहिए। इसलिए सांड सुख से सोता है, बैल का काम करते करते तेल निकल जाता है—

हरि आश्रय मानो सुखद, केवल कृतिहि न सत्य।
बस सुखी बलिवद दुख, जिमि देखहु [?] कृत्य ॥[२]

ईश्वर साधन साध्य नहीं हैं, उसकी प्राप्ति उसी की कृपा से होती है—

कृपा न आवे सो प्रभू, वैसे साधन राह।
तुम तो करुना के निधो, क्यों न निबाज्यो नाह ॥[३]

---

१ द० स० दो० ६२४।

२ वही दो० ३४६।

३ वही दो० १४।

भक्ति की पराकाष्ठा तब आती है जब भक्त सब कुछ छोड़कर भगवान् पर सम्पूर्ण रूप से अवलम्बित हो जाता है। यह उसकी अनन्य भक्ति है। उसका एक मात्र आश्रय प्रभु का आधार है। उसका सारा जीवन प्रभुमय बन जाता है। भगवान् रूठें तो भी ठीक, सन्तुष्ट हों तो भी ठीक। तारेंगे तो भी ठीक, मारेंगे तो भी ठीक—

> रूठोगे प्रभु रूठिहों, तोंहू कछू न सोख।
> क्रोध तिहारौ सुद्ध ह्वै, देगो फल बर मोख।।[1]

भक्त इष्टमय हो जाता है। प्रभु के समीप पहुँचना चाहता है। प्रभु से आग्रह भरी प्रार्थना करता है, अपनी सम्पूर्ण सत्ता प्रभु में विलीन कर देता है—

> दैवी नाँहि न देव की, निज औतार हु कोन।
> राजहु राधाकृष्ण जुग, निति मो हिर उरभोन।।
> मति धरम रति कृष्ण मम, गति वृन्दावन धाम।
> कृति सेवा श्रीनाथ कब, होहे रट हरि नाम।।[2]

इसके पश्चात् वह स्थिति आती है जब भक्त सर्वात्मा अपने आपको प्रभु को समर्पित कर देता है। शास्त्रीय भाषा में यही प्रपत्ति है। प्रपत्ति ही शरणागति है। प्रपत्ति के छः अंग हैं—

> आनुकूलस्य संकल्पः प्रतिकूलस्य विसर्जनम्।
> रक्षिष्यतीति विश्वासः गोप्तृत्वे वरणं तथा।
> आत्मनिक्षेपकार्पण्ये षड्विधा शरणागतिः।।

भगवान् जो चाहे सो करे, भक्त को सब कुछ स्वीकार है। अतः शिकवा-शिकायत का कोई प्रश्न ही नहीं रहता। शरण में भक्त आ पड़ा है, अब भगवान् को जो उचित लगे वह करें। दयाराम कहते हैं—

> जानूँ कछु न अविधि विधि, सरन पर्यो व्रजराय।
> आछो सबै जु आपकूँ, सो कृत लेहु कराय।।
> ताको मारौ हों धनी, ताकौं मो नहिं सोच।
> पै कहियें न अशक्य को, क्यों तेरे सोच।।[3]

---

१ द० स० दो० ६।
२ वही दो० २२।
३ वही दो० ४१, ३७।

भगवान् के मिलन में जो प्रतिबन्धक हो, उससे दूर रहना प्रपत्ति का दूसरा अंग है। इस आशय से प्रेरित होकर भक्त माया, मोह, काम, क्रोध और हरि विमुखों से दूर रहता है, उन्हें त्याज्य मानता है। दयाराम इस तथ्य की पुष्टि करते हुए कहते हैं—दुनिया में सब मलीन हैं, मुरारि का नाम ही पाप पुंजों से दूर करता है। समस्त कुटिलता और काम वासना का हरि ही दूर कर सकते है—

सकल मलिन सब जगत के, हर इक नाम मुरार।
विकल दोष अमिताभ्द कों, ज्यों तिहार सहार॥[१]

प्रपत्ति का तीसरा अंग है—"भगवान् रक्षा करेगा"—यह अटल विश्वास। भक्त का भगवान् में यह अटल विश्वास होता है कि भगवान् भक्तों की रक्षा करते हैं। दयाराम कहते हैं—'भगवान् तुम्हारा ही भरोसा है। तुम्हारे बिना भवसागर से पार करने वाला कोई नहीं है। कृष्ण का ही भरोसा है, केवल वही उद्धार करेंगे—

अभय कृष्ण आराधिका, और देव की आस।
जामें नहिं बसमत्र कों, जगता भाजें त्रास॥[२]
नाम विसम्भर कृष्ण कों, जिम मन सोते रच।
ऐसे ध्रुव धर करि हरि, जुगना रचिहैं चव॥[३]

एकान्त में भगवान् का वर्णन करना, स्मरण करना, ध्यान करना, उनकी कीर्ति का गायन करना आदि प्रपत्ति के चौथे अंग हैं। दयाराम बड़े प्रेम से भगवान् का स्मरण करते हैं। उनके गुणों का गान करते हैं उनकी महिमा का चित्रण करते हैं—

बल जेतो हरि नाम इक, बुहन पाप को आहि।
कोटि कलप करि करन कों, तितों ओज जिय नाहि।
टरें न श्री हरि नाऊसों, एसो अघ नहि कोय।
ऐसी वस्तु न होय जो, नम निमग्न नहिं होय॥[४]

---

१ वही दो० ६५६।
२ वही दो० २६६।
३ दयाराम सतसई दो० ३६६।
४ वही, ३४२। ३४१

आत्मनिक्षेप या आत्मनिवेदन में भक्त प्रभु के प्रति समर्पित हो जाता है। भगवान् और भक्त के बीच प्रेम-प्रेमिका की भूमिका के बीज इसी में निहित हैं। प्रेम-भक्ति के विषय में पहले कहा जा चुका है। यहाँ आकर तदाकारिता की वह अनुभूति पैदा हो जाती है, जिसे दयाराम ने इस प्रकार व्यक्त किया है—

मुकर मुकर सब वस्तु भई, नयन अयन प्रिय लाल।
द्रग पसार जित जित भली, तित तित लखूं गुपाल ॥[1]

प्रपत्ति का छठा अंग है कार्पण्य। दीनता भक्ति का सबसे बडा हथियार है। दीनता, नम्रता, प्रार्थना, याचना आदि के द्वारा भगवान् को दया करने के लिए आर्द्र किया जा सकता है। दयाराम के शब्दो मे—

चिन्ता उदधि निमग्न हौं, भयो गहे को हाथ।
एक तिहारों सरन हौं, बडवानल ब्रजनाथ ॥[2]

३ भक्त और भगवान्—

भगवान् का शील-स्वभाव ही ऐसा है कि वे स्वय भक्तो की देखभाल करते हैं। भक्त उन्हे सबसे अधिक प्रिय है—'मो मे भक्त स मे प्रिय'। भक्त को कहने की आवश्यकता नही रहती है। दयाराम आश्वस्त हैं कि प्रभु कृपा करेंगे ही—

अपने अपने सील कों, सब को करत निभाव।
तुम कृपाल हम कीट तो, सहजहि दृष्ट सुभाव ॥[3]

भक्त का एक मात्र आधार होता है भगवान् और भगवान् के प्रेम का एक मात्र पात्र होता है भक्त। सिंहनी का दूध कंचन के पात्र मे ही ठहरता है, हरि का प्रेम भक्त को ही खोजता है। भक्त प्रभु का छोटा पुत्र है। छोटे पर मा-बाप का अधिक स्नेह होता है—

---

१ दयाराम सतसई, दो० १००।
२ वही, दो० २३।
३ वही, दो० १०।

सोई भाजन प्रेम रस, प्रकट कृष्ण के गात्र।
पय पुडरिकनो को न जो, रहि बिन कचन पात्र॥
भक्त बाल वड ग्यानि सुत, जुग्म जानि जदुराइ।
पै न प्यार बाछल्य ह्वाँ, सिसुपै अति अधिकाइ॥[1]

भक्त जितना निर्धन, अकिंचन उतना वह उसको प्यारा। दुर्योधन की मेवा त्याग कर भगवान् ने विदुर की सूखी रोटी खाई। वास्तव में भक्त पर जब भगवान् की कृपा होती है तब वह भगवान् से भी अधिक बलवान् हो जाता है। जिस अग्नि से लोहा गर्म होता है उस अग्नि को छूना आसान है पर उससे गर्म लोहे को छूना कठिन है—

बडे सन्त भगवन्त तें, पै बल अधिकौं दास।
छग्यों लोह जाइ न गह्यों, ज्यो कछु सरल हुतास॥[2]

भक्त अपनी भक्ति की चरम सीमा में भगवान् के साथ अनेक प्रकार से अपना नाता जोडते हैं। वे अपने आपको दीन-हीन, पापी-अधम, छली-कपटी, अति लघु और विनीत बताते हैं और भगवान् का महान् शक्तिशाली, अधम-उद्धारक, स्वामी और विभु बताकर नाता जोडते हैं। कभी दीन-दयालु कभी पापी-पापहारी, कभी डूबने वाला और तराक, कभी दास और स्वामी, कभी दुष्ट और साधु आदि पारस्परिक सम्बन्ध जोडकर नकट्य स्थापित करते हैं। भक्तो का आशय यह होता है कि भगवान् गुणों के कारण ही नहीं, दोषों के कारण भी उद्धार करता है। इसमें भक्त की अन्तर खोज का वह दीपक जल उठता है जो उसके हृदय के कोने-कोने को उजागर कर देता है। दयाराम ने भी ऐसे अनेक सम्बन्ध प्रभु से जोडे है—

लखिहों आप जु आपपन, आप नैंन गोपाल।
तौं का पाप प्रताप मों, हरि हरिहो दुखजाल॥
तुमसें तारन निकट मों, बूरत गहों न हाथ।
लाजि बनत यह समय का, भले ठरोगे नाथ॥
करिहों नीको नाथ सब, मेरी मो विश्वास।
भलो करत हों भक्त को, हों तो घर को दास॥[3]

---

१ दयाराम सतसई दो० १३६। २१५।
२ वही, दो० ४७।
३ वही, दो० ६, ५०, ४०।

भक्त कभी भगवान् से इतना घनिष्ट सम्बन्ध जोड लेता है कि वह अपनी खीझ भी प्रभु के सामने प्रकट करने मे सकोच नही करता है, जसे मुँह लगा भृत्य या निष्ठावान् सखा। दयाराम भी प्रभु को सुना देते ह—"अरे बलवीर! तुम तो बडे विवेकी हो, फिर यह अधेर क्यों ? क्या मैं अजामिल से कम हूँ ? तो मुझे तारने मे इतनी देर क्यो ? यदि म अपने बल से तरूँगा तो इसमे तुम्हारी क्या बडाई ! उल्टा तुम्हे अपयश मिलेगा। अत मुझे तारोगे तो तुम्हारा ही यश सुरभित रहेगा—तुम्हे ही लाभ है।"

"अरे प्रभो! तुम्हारा कैसा विवेक ह ? कसा स्वभाव है ? देखो गृद्ध और गणिका स्वर्ग म मौज उडा रहे हैं और भूतल पर भले मनुष्य भटक रहे हैं। तो क्या अपने यश का सिंधालोन डालकर अचार बनाओगे ? देखिए—

बड़ विवेक बलबीर तुम, क्यो कहिए अन्धेर।
अजामिल सों हूँ म मे, सुनत न मेरी टेर॥
साधन बल हो तरूँगो, प्रभु का तुम ऐसान।
करिहो तारन बरद का, डारि सिंधानो लोन॥[1]

दयाराम की भक्ति-भावना मूलत पुष्टि मार्गीय भक्ति-भावना है। भगवान् का प्रेम सम्पादन करना ही जीवन का परम सौभाग्य है। प्रेमलक्षणा भक्ति ही सर्वोत्तम भक्ति है। उसमें प्रेम, आसक्ति, व्यसन और तन्मयता के सुन्दर चित्र उभरे हैं। भक्त के सारे व्यक्तित्व को आत्मसात् करती हुई दयाराम की भक्ति भावना प्रभु का सामीप्य प्राप्त करने मे समर्थ है।

---

१ 'दयाराम सतसई' दो०, ५६८, ४६२।

७ ‖ प्रेम भावना

मानव-जीवन मे सबसे अधिक वरेण्य वस्तु प्रेम है। ससार-प्रपच के मूल में भी यही भावना निहित रहती है। इसलिए प्रेम के अनेक रूप हैं, विविध व्याख्याएँ हैं। वह ससार-चक्र की धुरी है जिसके आधार पर ससार गतिशील होकर घूमता रहता है। साधारण प्रियता या पसन्द को लेकर सर्वात्मना समर्पण तक की भाव छायाओ को प्रेम अपने आपमे आवृत कर लेता है। वह बडों के प्रति श्रद्धा बन जाता है, छोटो के प्रति प्यार, बराबरी वालो के प्रति वह सख्य है तो ईश्वर के प्रति परा अनुरक्ति है। पुत्र के लिए माता का प्रेम वत्सलता है तो माता के लिए पुत्र का प्रेम आदर और श्रद्धा। समस्त मानवीय सम्बन्धो की तह मे प्रेम की अन्त सलिला सरस्वती विद्यमान रहती है।

परम भागवत श्री रूप गोस्वामी कहते हैं—'जिस भाव के कारण अन्त करण अतिशय कोमल हो जाता है, जिससे अत्यन्त ममत्व होता है उस भाव को विद्वान प्रेम' कहते हैं। मानव मन की द्रवीभूत अवस्था ही प्रेम है।

सम्यग् मसृणितस्वान्तो ममत्वातिशयाकित ।
भाव स एव सान्द्रात्मा बुधै प्रेमा निगद्यते ॥[1]

दयाराम भक्ति मे सराबोर थे। प्रेम लक्षणा भक्ति उनकी साध्य थी। प्रेम मे वे आकठ निमग्न थे। प्रेम उनकी कविता का केन्द्र है। उनकी भक्ति की नीव प्रेम की धरती पर पडी है। उनकी भक्ति प्रेममयी है और प्रेम भक्तिमय।

दयाराम ने सतसई मे पचास दोहो मे प्रेम के विषय मे अतिशय मार्मिक और सटीक उक्तियाँ प्रस्तुत की हैं। दयाराम-साहित्य के अधिकारी विद्वान् डॉ० नागरजी ने दयाराम की प्रेम भावना के विषय में अपना मत प्रकट करते हुए लिखा है—"प्रेम की महिमा का बडा ही सूक्ष्म और मनोवैज्ञानिक वर्णन सतसई मे दिया गया है।[2] सतसई के प्रेम विषयक दोहो मे दयाराम ने प्रेम के सभी पहलुओ पर अपनी धारणा के अनुरूप समर्थ अभिव्यक्ति करने म सफलता पाई है।

---

१ भक्तिरसामृतसिन्धु पूर्व भाग/४ लहरी।
२ दयाराम सतसई, भूमिका, पृ० २२।

प्रेम अजोड है, अमूल्य है। वह सर्वोपरि है। सर्वव्यापक है। वह विचित्र है, अनिर्वचनीय है। वह नित्य नूतन है, कार्य-कारण की पहुँच से दूर है। वह दुख मे भी सुख पर्यवसायी है। जसे आकाश का अन्त नही दिखाई देता ह, चिन्तामणि का मूल्य नही आंका जा सकता है, जीवो की सख्या की गणना नही की जा सकती ह, उसी प्रकार प्रेम की इयत्ता नहीं बताई जा सकती है, वह अमृत से भी मीठा है, अगूर से भी अधिक रसीला है। अगूर और अमृत जैसे सहस्रों फल उसके कदमो पर न्योछावर किये जा सकते है। योग, यज्ञ, जप, तप, तीर्थ, ज्ञान, धर्म, व्रत और नियम उसके सामने नादान हैं।

"लह्यो न अन्त अकास कहुं, चिन्तामनी न मोल।
संख्या नाहीं जीव की, तैंसे प्रेम अमोल॥
जैसो मीठो नहिं पियुस, नहिं मिसरी नहिं दाख।
तनक प्रिय माधुय प, न्योछावर अस लाख॥"[1]

प्रेम का प्रभाव बडा पैना होता है। उसकी लपेट मे आकर फिर छूटना दुष्कर है। वह बैर भुला देता है। पराये को सहोदर से भी अधिक मानता है। उसके स्पर्श मात्र से जहर भी अमृत बन जाता है। मन के चचल पारे को स्थिर रखने के लिए प्रेम गधक है। अन्य जडी-बूटियो से चचल मन हाथ मे नही आता ह। प्रेम की डोर उस खीचकर ला देती है। प्रेम मे गाली भी मीठी लगती है। प्रेम का फन्दा भी बडा अजीब होता ह, अन्य फदो मे पडने वाले और होते हैं, बिछाने वाले और होते है। पर इस फन्दे मे तो फन्दा बिछाने वाला ही शिकार बन जाता है—

"करैं सहोदर तें सरस, दे बिसराई बैर।
प्रेमी पानी परस तें, सुधा सरस [illegible] जैर॥
मन रस रस-गंधक मिल्यौं, चपल अचलता पाय।
और जतन बहु बुट्टि तें, क्यो रबु गह्यों न जाय॥
व्याध फन्द मृग परतु है, बध अहेरी हैं न।
प्रेम अजब वागुर में, पारनहार बचें न॥"[2]

१ 'दयाराम सतसई' सं०—डॉ० अम्बाशंकर नागर, दोहा—६१, ८३।
२ वही, ८२, ६१, ६३।

प्रेम अनिर्वचनीय है। उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। वह विचित्र भी है, विस्मयकारी भी है। वह सुख मे दुख की सम्भावना है और दुख में सुख की एकमात्र आशा। उसका व्यक्त नहीं किया जा सकता है। वह गूंगे का गुड़ है, मूक की मिसरी है—

"प्रेमामृत को स्वाद कस, को कयु कह्यों न जाय।
अनुभविर्यो हिय जानहो, मुक मिसरी की नाय॥
सुख मे दुख सनेह मे, विद्रन देहु जुयाप।
जो सुख तो सब करत क्यों, क्यों सुख तो परिताप॥"[1]

प्रेम करना सरल काम नहीं है। प्रेमी भी सहस्रा म न एक ही होता है। प्रेम की बाजी जीतना बायें हाथ का खेल नहीं, दायें हाथ से सिर काटने का चमत्कार है। उसके लिए सब कुछ त्यागना पड़ता है। लोक लाज, कुल, वेद और विवेक का बल उसके सामने हस्तावनत है। ज्ञानी, तपस्वी अनेक मिल जाते हैं परन्तु प्रेमी मिलना कठिन है। प्रीति प्रारम्भ म भली लगती है, पर फिर उसकी रक्षा में प्राणो की आहुति देनी पड़ती है—

"होत प्रीति नीकी लगै, फिरि अरि त्यों लें प्रान।
कुम्भिनी निगलत जब म दुःख, पाछें क्यों ओय वर्णन॥
ज्ञानी तपस अनन्त पै, शुद्ध प्रेमी कहुँ एक।
जैसें करि हरि व्यूह त्यों, सिंह न होंहि अनेक॥
प्रेम नेह यह वह लहैं, वह मन्त निति देह।
जरैं बिना दीपहु न ज्यों, पावत पिवन सनेह॥"[2]

प्रेम के भिन्न-भिन्न पहलुओं पर विचार करते हुए दयाराम अब प्रेम के निर्माण म मदद देने वाले तत्वो की ओर बढते है। प्रेम एक चिनगारी है, जो नेत्रो के चकमक के सन्दर्भ से पैदा होती है और रूप रूपी रुई को पकड़ते ही सुलगकर, गुण रूपी लकड़ी का सहारा पाकर प्रज्वलित हो उठती है। नजरों की यह आग बड़ी जालदार है। इससे बचने का कोई उपाय नहीं है। अन्य नजरा से तो बचा जा सकता है, पर इस नेत्रदृहिता से तो तोबा-तोबा। इसके बिना अमृत भी जहर बन जाता है। ज्ञानी भी मूर्ख हो जाता है, मित्र भी अरि मे बदल जाता है। इतना ही नही, 'सब' कुछ 'शव' बन जाता है। इसके पोषक हैं—रूप, द्रव्य, गुण और नायक है—छल-कपट, दुर्वचन और

१ 'दयाराम सतसई' स०—डा० अम्बाशंकर नागर, दोहा ९४, ९४।
२ वही, दोहा ११५, १०४, १३१।

परासक्ति। नायक, नायिका और दूती के सुभग समन्वय से प्रीति साकार होती है। औरों के प्रति ईर्ष्या और प्रिय के विरह की पीड़ा—ये दो प्रीति के बड़े अङ्ग हैं—

"चकमक-सु परस्पर नयन, लगन प्रेम परि आग।
सुलगि सोगठा रूप पुनि, गुन दारु दृढ जागि॥
रूप द्रव्य गुन उदय शलि, पोषक सेवा सत्य।
लय परलगन कितव कुवच, जद्यपि मे दृढ़ अत्य॥
और अरिस्या विरह दुख, हिलग अंग बड़ दोय।
सिखी धूम्र ओ ताप बिन, जिमि कहुँ कदा न होइ॥"[1]

भवभूति ने अपने 'उत्तर रामचरित' में कहा है कि 'प्रीति को किसी बाहरी उपाधि की आवश्यकता नहीं रहती' है—

"व्यतिषजति पदार्थानान्तर कोऽपि हेतु,
न खलु बहिरुपाधीन्प्रीतयः संश्रयन्ते।
विकसति हि पतङ्गस्योदये पुण्डरीक,
द्रवति च हिमरश्मावुद्गते चन्द्रकान्त॥"[2]

दयाराम भी प्रीति के लिए किन्हीं खास कारणों के प्रति पक्षपाती नहीं हैं। रूप, वर्ण और गुण—इनमें से प्रेम के लिए कोई भी प्रमाणभूत नहीं हैं। यदि कोई कारण भी हो तो भी प्रीति उसके आधार पर नहीं चलती है—

"नहिं प्रमाण हित होन कों, रूप बरन गुन कोय।
कहाँ अमर ईंधन धुँआ, मृगमद सों मति पोय॥
कारन कछु रति होनधर, चहि फिर रहु या जाव।
बेली जब मण्डप छही, कहौंर न काम लगाव॥"[3]

प्रेम के लिए पात्रों का होना आवश्यक है। दो पात्रों के बीच ही प्रायः प्रेम का निर्माण होता हुआ दिखाई देता है। प्रेम की सम्पूर्ण कलाएँ तब विकसित होती हैं जब उनमें काम का सम्पुट लग जाता है। काम सब कुछ नहीं है। जैसे गहनों के निर्माण में लाख का अपना योगदान है उसी प्रकार

१ 'दयाराम सतसई' स०—डा० अम्बाशंकर नागर, दोहा ६८, १०३, १४९
२ 'उत्तर रामचरित' अङ्क—६, श्लोक—१२।
३ 'दयाराम सतसई' स०—डा० अम्बाशंकर नागर, दोहा ९२, १११।

प्रेम-पात्रो मे प्रेम का पौधा रोपने के लिए काम आवश्यक माना गया है। दयाराम कहते हैं —

यार चामिकर मन मनो, मैनभाव तुछ लाख।
ता बिन जमत न स्वाद श्रो, भूषन रति वे लाख ॥[१]

लाख सोने के आभूषणो मे मणि जमाने की प्रक्रिया मे स्वय खाक होकर उसे ढाँचा देकर साकार कर देती है। काम का कार्य भी प्रेम के पल्लवन मे कुछ एतादृश ही है। दयाराम प्रेम मे काम के पक्षपाती हैं।

प्रेम-प्रेमिका एक प्राण दो शरीर हैं। एक-दूसरे के अधीन रहना उनकी पहली शर्त है। एक-दूसरे पर ही ध्यान केन्द्रित करना—दूसरी शर्त है। एक-दूसरे के अवगुणो को मन से बाहर निकाल देना—तीसरी शर्त है। प्राणो से भी अधिक प्रिय को मानना—चौथी शर्त है। दोनो के स्नेह मे सम्पूर्ण एकता होनी चाहिए,—

श्रुति लोचन लो मीत दुवें, अपर आत्म दो देह।
सब भाँती सों ऐक्यता, ऐसों दुर्लभ नेह ॥[२]

जो एक-दूसरे को देखकर जिऐं, मिलकर अलग न हो—ऐसे आशिक-माशूक धन्य हैं —

देखि जिऐं परसि न छूटें, माशुक आशक धन्य।
जैसे लोह चमक लगो, टरें न लख चैतन्य ॥[३]

प्रेमी के अवगुणो पर ध्यान नही देना चाहिए। अवगुण तो शव के समान हैं। प्रेमी हृदय सागर है। सागर शवो को अपनी तलहटी मे नही ले जाता अपितु ऊपर-ही ऊपर तराते हुए उन्हे एक अपरिचित किनारे पर फेंक देता है। प्रेमी को भी अपने प्रिय के अवगुणो को एक किनारे पर डाल देना चाहिए —

औगुन वल्लभ को कछु, टिकें नहीं उर आय।
ज्यों सब सागर पट मे, रहै न निकसो जाय ॥[४]

एक दूसरे मे सम्पूर्ण रूप से खो जाना ही प्रेम की चरमावस्था है।

---

१ 'दयाराम सतसई' स०—डॉ० अम्बाशकर नागर, दोहा १३२।
२ वही, दोहा १७०।
३ वही, दोहा ११६।
४ वही, दोहा १५०।

इसी को शास्त्रीय भाषा मे तदाकार परिणति या तादात्म्य कहते हैं। दयाराम ने इस प्रेम की तदाकारता को अपनी सतसई मे बडे उच्छ्वसित स्वरा मे गाया है। कुछ प्रसगा के द्वारा भी इस महास्थिति को रूपायित करने का उन्होने स्तुत्य प्रयास किया है। एक गोपी अपनी सखी से कह रही है कि देखो आज गजब हो गया है। कृष्ण का मुख देखते-देखते तो मैं इतनी खो गई कि मेरी गागर मे पानी भरने के बजाय पानी पनघट पर ही बिखर गया—

सुखरासी सुध न रही, लखि के मुख सुखरासि।
रस लेते रस बीखर्यो, पनघट भई उपहासि॥[१]

पनघट पर वह अपनापन भूल जाती है। उसकी इज्जत को धक्का लगता है। तो भी वह पनघट पर जाने का लोभ सवरण नही कर सकती है क्योंकि वहा उसे तदाकार होने का मौका मिलता है —

पनघट पनघट जाय मन, घट पनघट को ध्यान।
पनघट लाल चढ़ाय है, अलि पनघट सुख खाँन॥[२]

सवत्र अपने प्रियतम की छवि का दर्शन करना प्रेम की सर्वोपरि अवस्था है। कालिदास के विक्रम ने, जायसी की पद्मावती ने इसी प्रकार के तादात्म्य को अगीकार किया है। दयाराम भी प्रेमी की इस तदाकारता की एक सुन्दर अभिव्यक्ति करते हैं —

मुकुर मुकुर सब वस्तु भई, नयन अयन किय लाल।
द्रग पसारु जित जित अली, तित-तित लखू गुपाल॥[३]

इससे मिलती-जुलती दूसरी एक अवस्था है, जहाँ प्रेमी प्रेमिका मे और प्रेमिका-प्रेमी मे अपनी पहचान देखते है। राधा कृष्ण बन जाती हैं और कृष्ण राधा —

स्यामा स्याम पुकारती, स्यामा रटते स्याम।
अली अचम्भो आज यह, जुगल जपत निज नाम॥
हरि हरिवदनी सो लिख्यौं, हम ध्यावत तुम ध्याउ।
का चिन्ता हम तुम बनें, तुम हमसे ह्वै जाउ॥[४]

---

१ 'दयाराम सतसई' स०—डॉ० अम्बाशकर नागर, दोहा ७६।
२ वही, दोहा ७७।
३ वही, दोहा १००।
४ वही, दोहा ७८, ८०।

विरह वर्णन—

प्रेम में उसकी पीडा का अनन्य महत्व है। 'प्रेम की पीर' को अनुभवी ही जानते हैं। प्राणो की पीडा से भी प्रेम की पीडा अधिक तीव्र होती है। प्राण की पीडा तो सहन की जा सकती है, पर प्रेम की पीडा असह्य होती है। पर मजा यह है कि अन्य पीडाओ से दूर भागता है और इस निगोडी को वह हृदय से सटाये रखता है —

विषई विष बच्छन करत, बहुत बिगारत भूख।
मैं मन हूँ सब त्यों समुझि, रति दुख मे हू सूख॥
रति सुख-दुख जानें न को, बिन इक अनुभकारि।
विदित न पीर प्रसूत जिमि, बन्ध्या नागरि नारि॥
प्रिय प्राण सम सब कहैं, मेरे मन अस नाहि।
प्रिय की पीर न सहि परैं, असु इन सोसो जाहि॥[1]

'प्रेम की इस पीर' की 'परमानुभूति' होती है विरह में। प्रिय पात्र के समीप न होने म जो भावना बनती है, उसे विरह भावना कहा जाता है। प्रेम के लिए विरह आवश्यक है। 'साहित्यदपणकार' विश्वनाथ महापात्र का कहना है —

न बिना विप्रलम्भे, न सम्भोग पुष्टिमश्नुते।
कषायिते हि वस्त्रादो भूयान् रागो विवर्द्धते॥[2]

वियाग के बिना सयाग की पुष्टि नहा होती है। किसी भी वस्त्र पर गाढा रग चढाने के पूर्व उसे हिरमिज म रगना पडता है, इसके बाद लगाय गए रग की चमक बढती है। दयाराम भी प्रेम में 'विरह' को महत्व देते हैं। प्रेम की लता ही ऐसी है, जो विरह अग्नि से ही हरी-भरी रहती है और मिलन रूपी पानी म मुरझा जाती है। वास्तव में 'रति' विरह म सुख देती है जैसे करेला प्रथम कडवा लगता है पश्चात् वह मृदु हो जाता है। धूप में तपे बिना पेडो की सघन छाया का मीठा अनुभव नहीं हो सकता है, ठीक उसी प्रकार विरह की आंच म तपे बिना प्रेम की मृदुता की अनुभूति नहीं हो सकती है। स्नेह का भाव ही विरह है। जितना बडा सताप उतना गहरा प्रेम। पीर के बिना प्रीति कसी?

---

१ 'दयाराम सतसई' दोहा ८५, ११२, १५२।

२ 'साहित्य दर्पण' कलकत्ता संस्करण, तृतीय परिच्छेद २१४, पृ० १६४।

पीर बिना प्रीती कहूँ, चितइ न सुनि अद्याप।
ताप बिहिन तृष्णा न जिमि, बिन तृष्णा न सताप।।
बिना विरह अनुभो दहत, तति रति उपजे नाहि।
जिमि बिनु आतप तनु तयें, मिष्ट न लगि द्रुमछाहि।।[1]

जैसे-जसे विरह बढता जायगा वैसे-वैस प्रेम मे बढोतरी होती जायगी, सोना भी उतना ही अधिक निखरता है जितना वह आग मे तपाया जाता है —

जिमि आरति तिमि रति बढ़े, अति यह हिलग अनूप।
ज्यों तचाइये त्यो अधिक, ज्यो अष्टापद रूप।।[2]

दयाराम प्रेम के कवि हैं। प्रेम के विविध पक्षों का उन्होंने सुन्दर निरूपण किया है। प्रेम मे काम के पुट का अस्तित्व उन्होंने खुले मन से स्वीकार किया है परन्तु उसका महत्व आभूषणा के निर्माण मे लाख के जितना ही है, यह स्वीकार किया है। आभूषण के बन चुकने पर लाख को खाक (भस्म) किया जाता है। प्रेम के पुष्ट होने पर काम को भी खाक कर देना चाहिए—यह उनका मत हो सकता है। प्रेम की विचित्रता, विशेषता, अनिर्वचनीयता और प्रेम मे पीडा और विरह के पहलुओ पर सूक्ष्म विचार किया गया है। दयाराम ने प्रेम की व्याख्या देते समय लौकिक, यथार्थ उदाहरण देकर प्रेम के अपने विचार को सुन्दर रूप से व्यक्त किया है। गुजराती मे भी दयाराम ने प्रेम का यही निरूपण किया है। गुजराती साहित्य के आलोचकों ने 'भक्त प्रणयी कवि' कहकर 'प्रेम के कवि' के रूप मे उनकी प्रशसा की है। यथार्थ प्रेम की एक श्रद्धाजलि के रूप मे कवि की ही एक गुजराती उक्ति से इस विवेचन का उपसहृति करें —

आपण साचो स्नेह कीजिए परस्पर माल रे।
तमे कहो ते अमो करु, तमे पालो अमारो बोल।।[3]

---

१ 'दयाराम सतसई' दोहा २३६, २३८।
२ वही, दोहा १६५।
३ 'दयाराम काव्य सुधा' पृ० ४४।

८ ‖ रूप-वर्णन

रूप वर्णन, विशेषतः भारतीय कविता का शृङ्गार रहा है। रीतिकालीन हिन्दी कविता का तो यह प्रमुख अंग बन गया था। शताधिक रूप चित्रों से हिन्दी साहित्य की सभी विधाएँ अलङ्कृत हो गई। मानवीय देह-सुषमा के कुशल चितेरे कवि एक-से-एक बढ़कर रूप चित्रों का सर्जन करने लगे। रूप में काम, सौन्दर्य और प्रेम का त्रिवेणी संगम होता है। इसलिए साहित्य में रूप का महत्व सनातन है।

दयाराम पुष्टिमार्गीय भक्त थे। पुष्टिमार्ग में भगवान के रूप के प्रति आसक्ति को भी भक्ति का एक प्रकार माना गया है। दयाराम रूप की महिमा को पहचानते हैं। उसे गुण से भी बड़ा समझते हैं। गुण तो जानकार को ही घायल करता है, रूप तो जानकर और अनजान, परिचित और अपरिचित, दोनों का चारा खाने चित्त कर देता है—

लगत रूप बड़ गुनहु ते, कर देखत अनुमान।
करे अधिम गुनि जाति इक, रूप दुहु जान अजान॥[1]

गुण को रूप का सहारा चाहिए क्योंकि गुण में जब रूप का संयोग होता है तो उसका आकर्षण बढ़ता है—

कौन न पूजे ताकु फिरि, बाह्मन प्रभु हरिभक्त।
रूपवन्त सह गुनि जिमो, तापै सब आसक्त॥[2]

रूप के जादू का असर सर्वत्र दिखाई देता है। चतुर इसमें हलाक हो जाते हैं, मूढ़ घूमते घामते रहते हैं। रूप नृप के राज की रीति-नीति यही है—

रूप भूप के राज में, यह महान अन्याय।
नाम न लें कों मूढ़ को, च्यातुर मारे जाय॥[3]

दयाराम का रूप वर्णन संक्षिप्त है। संयमित भी है। दयाराम ने मुँह, नैन, अधर का कुछ अधिक वर्णन किया है। शेष अंगों का उल्लेख मात्र है,

---

१ 'दयाराम सतसई' छन्द ६७१।
२ वही, छंद ६७२।
३ वही, छंद १२१।

जो उसके सौन्दर्य की एक गूढ़ झलक ही निवेदित करता है। इसलिए दयाराम का रूप वर्णन नखशिख कोटि का न होकर केवल विशेष अंगों का वर्णन मात्र है।

रूप भूप के गुप्तचर हैं नैन। नैन ही रूप का आनन्द लूटते हैं, वाणी उसे व्यक्त करने में असमर्थ है—

रावरे रूप रसाल सुख, समुझत हैं सो नैन।
पै न बैन हैं नैन कौं, नैन नहीं हैं बैन ॥[1]

रूप के बखान में वाणी छोटी पड़ती है, पर हृदय को जो जुबान दी गई होती तो हृदय जरूर उसे कहे बिना नहीं रहता—

कैसे प्यारे लगत हौ, कहत न आवत पीय।
कहैं दिखावत खोलि जो, दै हैं होतो हिय ॥[2]

ऐसे 'गूंग केरी सर्करा' रूप की, दयाराम ने अपनी 'सतसई' में कुछ 'रस प्रीतिकरी' झलक दिखाने का सुन्दर प्रयास किया है।

दयाराम कहते हैं कि रूप का प्रभाव बड़ा तेज होता है। वह तो द्रष्टा की लज्जा, बुद्धि, बल और स्मृति-धृति को तिरोहित कर देता है, उसे मौन-मुग्ध बना देता है—

लखि सुधि बुधि सरम हौ, भागुर भागुर जाय।
अलि चटार ज्यों बेस बस, मृदु सरोज मुरझाय ॥[3]

नेत्र अद्भुत हैं। बिना हाथों लिपट जाते हैं। बिना बोले सब कुछ प्रकट कर देते हैं और बिना हथियार उठाए करारी चोट करते हैं—

लिपटे पिय को पानि बिन, बानि बिनु कहि बात।
अहो सलोने द्रग अली, करें शस्त्र बिनु घात॥[1]

आँखों की त्रिवेणी मुक्तिदात्री है। इनके काले गोलक, सफेद अपाग और लाल डोरे विरह से तत्काल मुक्ति दिलाते हैं—

ललना लोचन सित असित, गोलक डोलक डोरे लाल।
यह त्रिवेनी मज्जन सही, मुक्ति विरह गोपाल॥[2]*

रसलीन ने आँखों में 'अमिय, हलाहल, मद' का निवास माना है। दयाराम ने आँखों में एक साथ अमृत, जहर को तो माना ही है, साथ ही-साथ कहा है—नेत्र चचल हैं, कृपालु हैं, प्रेमी हैं, वेधक हैं। वे मान से करारे हैं और लज्जा से अवनत हैं—

अमियविष रस रति तरलता, कृपा त्रपा रुचि मान।
इत्यादिक गुन सकल को, लोचन उपमा कान॥[3]

दयाराम अधर-रस के पारखी हैं। अधर-रस के पान का प्रभाव ही अनूठा है। समीपस्थ सफेद नासा मोती भी अधरों के राग से रक्त हो जाता है फिर पान का तो कहना ही क्या—

---

१ 'दयाराम सतसई' छंद २५२।
२ वही, छंद २५३।
३ वही, छंद २५४।

* देखिए तुलना के लिए—

"अमिय हलाहल मद भरे, स्वेत स्याम रतनार।
जियत मरत झुकि झुकि परत, जिहि चितवत इक बार॥"

—'अंग दर्पण' छंद ३५।

प्यारो तेरो अधर रस, क्यो बिसरें गोपाल।
बेसरे निरमल मुक्त हू, जिहि परसत मो लाल ॥[1]

मुख तो चन्द्रमा है। उसकी आभा सम्पूर्ण उत्फुल्ल है। इसलिए दयाराम अपनी नायिका को सलाह देते हैं—

श्यामा तू जिन जाई सर, बिन घूंघट पट खोल।
परिहैं तेरो बदन लखि, भौर कोक मुख सोल ॥[2]

—श्यामा, घूंघट डाले बिना पनघट मत जाना। अन्यथा बिचारे भ्रमर और चक्रवाक उदास हो जाएंगे। मुख को चन्द्रमा ही समझ लेंगे।

इन अगो के अतिरिक्त अन्य अगो के सौन्दर्य की झलक मात्र दयाराम ने दी है। नायिका का सारा देह-सौन्दर्य एक ऐसा भू-भाग है, जिसमे नाग हैं, भ्रमर हैं, सिंह हैं और ऊँचे-ऊँचे पर्वत हैं तो अमृत तुल्य जल से भरेपूरे कूप भी हैं, यहाँ भय भी है, आनन्द भी है। नायिका के रूप-सौन्दर्य पर मुग्ध प्रेमी कहता है—'तेरी नाग-वेणी और भृकुटी-भ्रमर मुझे डंसते हैं। कटि-सिंह मुझे डराता है। कुच-पर्वतो की ऊँचाई से मन उडने लगता है। चिबुक-कूप के पान के लिए ज्यो ही गया त्यो ही गिर पडा—अब उभारकर अभय दान दो—

डस्यो कस्यों हरि भ्रमित मन, हरिसु ग्रस्यो अभिमान।
पस्यो चिबुक कूप थकि प्रिया, ताहि अभय दे दान ॥[3]

—वेणी-नाग ने मुझे डस लिया, भकुटी भौंरे ने कसकर पकड रखा, कुच-पर्वतो न मेरा मन डुला दिया और मैं अमृत-पान के लिए ज्यो ही चला कि चिबुक-गाढ मे थककर गिर पडा, अब तुम्ही उबारो।

शरीर के नौ अग अधिक प्रसिद्ध हैं। इन सबको दयाराम ने एक साथ लेकर सम्पूर्ण शरीर-सुषमा को व्यक्त करने का प्रयास किया है—

हरि कैसो मुख नयन हरि, कच कुच कटि कर पाय।
हरि सुबरन गनि बेनी छब, राधा हरि सुखदाय ॥[4]

---

१ 'दयाराम सतसई' छद २५५।
२ वही, छद २०६।
३ वही, छद ६५१।
४ वही, छद २५७।

—मुख चन्द्रमा के समान है। आँखें मृगनैन जैसी हैं। भौंरे जैसे काले बाल हैं। पर्वत से उत्तुंग कुछ, सिंह सदृशी कृश कटि, कमल जैसे कोमल हाथ-पैर, रंग सोने-सा और चोटी नागिन जैसी तथा गति (चाल) गज की-सी है। ये नौ ही शरीर-शोभा के निकष हैं। रूप में कुछ अंग तो आशिक भी हैं, और माशूक भी हैं—

कौन कौन सें कहूं बिबुध, निगमागम कूं याव।
श्री राधा के रूप मे, आशिक माशुक भाव ॥[1]

—नेत्र रूपी कमल माशूक है और भृकुटी रूपी भ्रमर आशिक हैं। अधर रूपी बिम्बाफल माशूक है और नासिका रूपी शुक आशिक है। कुच रूपी पर्वत के माशूक पर कटि रूपी सिंह आशिक है। मुख रूपी चन्द्रमा के माशूक पर पेट रूपी कुमुद आशिक है। जंघा रूपी कदली पर गति रूपी हाथी आशिक है। प्रेमी प्रेमिकाओं के ये युग्म शरीर में ही विद्यमान हैं। आँखों के सौन्दर्य पर भृकुटी मुग्ध है तो अधरों की ललाई पर नाक लट्टू। कटि की कृशता को कुचों की पृथुता पर गौरव है। मुख को पेट का अभिमान है और गति जंघा पर न्यौछावर है।

दयाराम ने रूप वर्णन में आभूषणों को महत्व नहीं दिया है। प्रेमी के नजदीक तो वे निरर्थक हैं क्योंकि सौन्दर्य को ढांक देते हैं। हां दुष्ट नजरों से सौन्दर्य को बचाते हैं—

मिलन समय मण्डन कहा, सु तन ढपें लगि साल।
मिरि आछें वपु वरम लों, तनक दूर जब लाल ॥[2]

फिर भी रंग बिरंग वस्त्रों से विभूषित कृष्ण की एक छवि दर्शनीय है—

कुलहि लाल पित उपरना, मिल तनु नंदकुमार।
प्रेम लपटि अनुराग सिर, मानु मुरति सिंगार ॥[3]

कृष्ण के श्यामल शरीर पर पीला उपरना और लाल कुल्ला ऐसा लगता है मानो मूर्तिमान शृङ्गार ने प्रेम में लिपटकर अनुराग को सिर पर

१ 'दयाराम सतसई' छंद ६१२।
२ वही, छंद ७०७।
३ वही, छंद २६४।

धारण किया हो। श्याम, पीत और लाल रंग के सम्मिश्रण का सुंदर चित्र इन पंक्तियों में उभरा है। ऐसा ही एक चित्र बिहारी ने भी दिया है—

सोहत ओढ़े पीत पट, श्याम सलौने गात।
मनो नील मनि सैल पर, आतप पर्‌यो प्रभात॥[1]

निष्कर्षत दयाराम का रूप-वर्णन संक्षिप्त और संयमित है। रूप के प्रभाव का ही अधिकतर वर्णन हुआ है। उसमें भी आंखों का वर्णन मार्मिक और सुरुचिपूर्ण है।



१ 'बिहारी सतसई' छंद ४।

६ ‖ नायिका-भेद

दयाराम रीतिकालीन कविता से प्रभावित थे। स्वभाव से वे रसिक और पुष्टिमार्गीय जीव थे। इसीलिए श्रीकृष्ण लीला के अन्तर्गत उन्होंने अपनी 'सतसई' मे नायिका-भेद के कुछ चुने हुए चित्रो को ही सजोया है।

नायिका—

नायिका को नायक से अधिक महत्व दिया गया है। वह आकर्षण का केन्द्र होती है, नेत्रो का उत्सव मानी जाती है, अमृत का वह अधिष्ठान है, सुख की खान है और सन्तोष का सागर है—

अमृतस्येव कुण्डानि सुखानामिव सासय।
सतोष निधानानि योषिता केन निर्मित॥[1]

—जिसे देखत ही हृदय म प्रीति की लहर अंगडाई लेने लगे उसे नायिका कहते हैं—

निरखत ही जिहि नारि के, नर हिय उपजै प्रीति।
ताहि कहत हैं नायका, जो जानत रस रीति॥[2]

नायिका होने की क्षमता वहा नारी रखती है, जिसके हृदय मे काम और प्रेम की धाराए बह रही हों, जिसके अग अग मे सौन्दर्य की रखाए स्फुट हो रही हो, जा गुणवती हो, शालवती हो, चरित्रवती हो, यौवनवती हो, जिसका रूप नित्य नूतन रहता हो। बिहारी के शब्दो म—

लिखिन बैठि जाकी सबी, गहि गहि गरब गरूर।
भये न केते जगत के, चतुर चितेरे कूर॥
लहलहाति तन तरुनई, लगि लगि लो लफि जाय।
लगे लाक लोयन भरि, लोयस न लेति लगाय॥[3]

---

१ 'शुकसप्तति' ५६वी कथा।
२ 'रसप्रबोध' रसलीन, दोहा ७४।
३ 'बिहारी सतसई' बिहारीलाल छन्द ३३७, ५२२।

ऐसी नायिका का, अनेक भेद-प्रभेदों में अनेक रूपों में, कवियों ने चित्रण किया है। इस सन्दर्भ में 'दयाराम सतसई' के अन्तर्गत उपलब्ध नायिका-भेद के रूपों का अब अवलोकन करें।

(अ) लोकमर्यादा के अनुसार नायिका भेद

लोकमर्यादा के अनुसार नायिका के तीन प्रकार निश्चित किये गये हैं—स्वकीया, परकीया और सामान्या।

(१) अथ नायिका त्रिविधा स्वाऽन्या साधारणी स्त्रीति ॥[1]

(२) ता नायक की नायिका, त्रयनि तीनि बखान ॥
स्वकीया परकीया अवर, सामान्या सु प्रमान ॥[2]

१ स्वकीया—

इनमें स्वकीया सर्वप्रथम है। विनय, आर्जव से युक्त, गृहकार्य में चतुर पतिव्रता नारी स्वकीया कहलाती है। कृपाराम ने स्वकीया के लक्षण प्रस्तुत करते हुए कहा है।

ब्याहे सों अनुरागि कै, रहै सदा जो नारि।
श्रुति आखर सी अचल मति, स्वीया कहे विचारि ॥[3]

दयाराम ने स्वकीया की तीन विशेषताएँ बतलाई हैं—१ वंशवृद्धि, २ गृह की शोभा और ३ सहगमन। प्रथम दो तो सर्वकालीन और सार्वभौम हैं और तीसरी विशेषता का अब बहुत महत्व नहीं रहा है।

वंशवृद्धि सोभासदन, करे सहगमन सोइ।
स्वकीया की यह तीन कृति, परकीया कबू न होइ ॥[4]

स्वकीया में सहगमन बतलाकर दयाराम ने तत्कालीन समाज की सतीत्व प्रथा का अनुमोदन किया है।

२ परकीया—

जो स्त्री गुप्त रूप से परपुरुषों से अनुराग करती है, उसे परकीया नायिका

---

१ 'साहित्य दर्पण' विश्वनाथ, ३/६९।
२ 'रसिकप्रिया' केशवदास, ३/ ४।
३ 'हिततरंगिणी' कृपाराम, २/६५।
४ 'दयाराम सतसई' स० डॉ० नागर, छन्द १९६।

कहते हैं। यह गुप्त रीति से प्रीति करती है, इसलिए गुप्त प्रेम के सभी आकर्षक पहलुओ की इसमे सभावना होने के कारण इसकी 'बदरा ओट के चाँद' की सी रमणीयता बढ जाती है। परकीया के लक्षण रसलीन ने इस प्रकार प्रस्तुत किए हैं —

निज द्युति देह बिवाह के, हरे और के प्रान।
नेह चहति निसिदिन रहे, सुदरि दीप समान ॥[1]

परकीया के दो भेद होते हैं—ऊढा और अनूढा। अनूढा वास्तव मे परकीया के क्षेत्र मे नही आती। इसलिए हिन्दी मे इसका केवल नामोल्लेख मात्र मिलता है। ऊढा विवाहित स्त्री होती है और परपुरुष को प्रेम करने के कारण परकीया कहलाती है। परकीया के सात भेद होते हैं—मुदिता, विदग्धा, अनुशयना, गुप्ता, लक्षिता, कुलटा और स्वयदूतिका। दयाराम ने कुलटा और गुप्ता को छोडकर शेष पाँच प्रकार की परकीया नायिकाओ के उदाहरण दिए हैं।

(आ) अवस्था-भेद से नायिका-भेद—

भरत मुनि ने नायिकाओ की आठ अवस्थाओ की अवधारणा करके आठ प्रकार की नायिकाओ का उल्लेख किया है। परवर्ती सभी विवेचको ने भी ये ही आठ भेद स्वीकृत किये हैं। परन्तु नन्ददास ने 'प्रीतगमनी' नाम से एक और भेद बढाकर यह सख्या नौ कर दी है। अन्य विवेचको के प्रवलय-प्रेयसी, आगतपतिका, आगमष्यत्पतिका और आगच्छत्-पतिका आदि भेदो को जोडकर विरहिणी नायिका की अनेक मनोदशाओ का चित्रण किया है। वास्तव मे ये आठ नायिकाएँ मनोविज्ञान की दृष्टि से साहित्य मे अनेक मर्मस्पर्शी भूमिकाएँ अदा करती हैं। कवियो की नवनवोन्मेषिनी प्रतिभा को इस क्षेत्र में सचरण का व्यापक अवसर मिला है।

१ प्रोषितभर्तृका—

नानाकार्यवशोद्‌यस्या दूरदेश गत पति।
सा मनोभवदु खार्ता, भवेत प्रोषितभर्तृका ॥[2]

---

१ रस प्रबोध रसलीन, छन्द २१२।
२ 'साहित्यदर्पण' विश्वनाथ छन्द ३/६६।

जाको प्रीतम दै अवधि, गयो कौन हू काज।
ताको प्रोषत प्रेयसी, कहि वर्णत कविराज॥[1]

—जिसके प्रियतम किसी अवधि विशेष के लिए दूर की यात्रा पर या परदेश गए हो और उसके अभाव म जिसे रति-पीडा होती हो, वह नायिका प्रोषितभर्तृका कहलाती है। वास्तव मे विरहानुभूति की सबसे प्रबल अभिव्यक्ति ऐसी ही नायिका के द्वारा होती आई है।

दयाराम ने कृष्ण के मथुरा जाने पर गोपियो की सामूहिक विरहानुभूति को व्यक्त किया है —

बारी बारी बारियें, बारी लौं दे बारि।
फिरि बारो दै बारि जलु, बारिद लौं बनवारि॥[2]

गोपियाँ कहती हैं कि 'हमें पहले तो प्रीति के जल से खूब पाला और पोषा, अब बनवारी हमें छोडकर मथुरा चले गए हैं और उनके अभाव मे हम विरह की अग्नि म झुलस रही हैं।

प्रोषित पतिकाओ को गहने भी लगते हैं। मन तो प्रियतम की याद में खोया रहता है, गहना की ओर कौन देखे ? और फिर वहाँ किसी के फन्दे मे पडे होगे तो—चिन्ता और ईर्षा की मिलीजुली भावना —

नाक सुहाय न मुक्त मन, रह्यौं लाल सौं लागि।
प्रिय घनश्याम मिले न ह्वा, सौं तिय सुख सब आगि॥[3]

विरहिणी प्रियतम की प्रतीक्षा मे है। इन्तजार करते-करते मन में निराशा फल गई, छाती ठडी पडने लगी और इतने मे ही सखी के हाथ मे प्रियतम का पत्र देखा। बिना पढे ही पत्र को पढ लिया। अत ठडी छाती पुन धधकन लगी —

पत्री गई बाचे बिना, लखि सखिकर पिय पानि।
छुहि छाती तातो भई, सीरो जो ग्रकि आन॥[4]

नायिका विधाता मे कहती है कि विधाता, यह दुःख कैसा दिया ?

---

१ 'रसिकप्रिया' केशवदास छन्द ७/१६।
२ 'दयाराम सतसई' स० डॉ० नागर, छन्द १५७।
३ वही, छन्द २२७।
४ वही, छन्द २२८।

प्रीति करवाकर प्रियतम छीन लिया। स्नेही दे द या फिर स्नेह वापस ले ले —

विधता प्रीति कराय क्यों, प्रीतम लानें छीन।
स्नेही दें कें स्नेह लें, यह का हे दुख दीन ॥[1]

नायिका प्रियतम के इन्तजार म है। प्रियतम नही आते हैं। उसे स्वय पर खीज चढती है और वह निराश हो जाती है, प्राणो की निरयकता पहचानने लगती है तब उसकी वेदना इन शब्दों मे सिमट जाती है —

हे आसा तुल सफल हो, क्यों तूं ह्वें जा नास।
जाय जीय मों दुख टरें, भाजें जग उपहास ॥[2]

प्रोषितपतिका म एक सार्वजनीन उदारता आ जाती है। वह किसी को दुखी नही देखना चाहती ह। मृत्यु को भी यह आशीर्वाद मानती ह —

वीर विरह दु ख अगि दु सह, जिन दें कों ज्युगदीस।
और कष्ट को का चलो, मरण भयो आसीस ॥[3]

२ खण्डिता—

पार्श्वमेति प्रियो यस्या अन्यसम्भोगचिह्नित ।
सा खण्डितेति कथिता धीरैरीर्ष्याकषायिता ॥[4]

आवत कहि आवे नहा, आव प्रीतम प्रात।
ताके घर खण्डिता कहे, सुकहु विधि बान ॥[5]

'दयाराम सतसई' म 'खण्डिता नायिका' के शीषक के अन्तर्गत जो १७७वा दोहा है, खण्डिता का अच्छा उदाहरण नही है। १८१वें दोहे में खण्डिता का अच्छा चित्र प्रस्तुत किया गया है —

सब ठां गुनिके सग तें पावें सब सनमान।
अगुन वतो उर में धरो, क्यो न होय अपमान ॥[6]

---

१ 'दयाराम सतसई' स० डॉ० नागर, छन्द २२६।
२ वही, छन्द २३१।
३ वही, छन्द २२४।
४ 'साहित्य दर्पण' विश्वनाथ ३/८८।
५ 'रसिकप्रिया' केशवदास ८/१६।
६ 'दयाराम सतसई' स० डॉ० नागर, छन्द १८१।

पति के वक्षस्थल पर अन्य नायिका की माला की सूत्रहीन अंकित छाप को देखकर खण्डिता नायिका उसे पति के अपमान का कारण बनाती है।

खण्डिता मे वक्र-उक्तियों की तीक्ष्ण धारा बहती है। अपराधी प्रियतम को लज्जित करने का इससे प्रखर हथियार भी और क्या हो सकता है। देखिये दयाराम की एक खण्डिता को —

झिल्ल भरे प्रति अग पिय, झिल्ल सोंह चित चार।
निपत झिल्ल का मो गिनो, प्रकट दुरंयत बात ॥[1]

खण्डिता के धीरा अधीरा और धीराधीरा के रूप में तीन भेद होते हैं। दयाराम ने इन तीनों के उदाहरण प्रस्तुत किए हैं।

३ कलहान्तरिता—

चाटुकारमपि प्राणनाथं रोषादपास्य या।
पश्चातापमवाप्नोति कलहान्तरिता सा ॥[2]
मान मनावत हू करे, मानद को अपमान।
पूनो दुखता बिनल हैं, अभिसधना बखानि ॥[3]
(केशव ने कलहान्तरिता को अभिसधिता कहा है।)

नायक का अनादर करने के बाद स्वय ही अपने व्यवहार पर पश्चाताप करने वाली नायिका कलहान्तरिता मानी जाती है। नायक के अनुनय-विनय करने पर भी कलहान्तरिता का रोष नहीं घटता है। परन्तु नायक के चले जाने पर वह पश्चाताप करती है। दयाराम की कलहान्तरिता कहती है—

हा हा कर हारे हरी, मैं न मनी परि पाय।
मो लायें अब लाय दें, को दें, लाय ललाय ॥[4]

४ उत्कण्ठिता—

आगन्तु कृतचित्तोऽपि दैवान्नायाति यत्प्रियः।
तदनागमदुःखार्ता विरहोत्कण्ठिता तु सा ॥[5]

---

१ 'दयाराम सतसई' स० डॉ० नागर, छद १८२।
२ 'साहित्य दर्पण' विश्वनाथ ३/९४।
३ 'रसिकप्रिया' केशवदास ७/१३।
४ 'दयाराम सतसई' स० डॉ० नागर, छद १८५।
५ 'साहित्य दर्पण' विश्वनाथ ३/९८।

कौन हुँ हेत न आइयो, प्रीतम जाके धाम ।
ताको शोचिन शोच हिय, केशव उत्का वाम ॥[1]

—जो नायिका नायक के आने की प्रतीक्षा में रहती है और किसी कारणवश इच्छा होते हुए भी नायक नहीं आ पाता है तो वह उद्विग्न हो उठती है ऐसी स्त्री उत्कण्ठिता नायिका कहलाती है—

छाँहि चाहि तन छाहि पिय, अब अनि आवें नांहि ।
फरकत मो अखि दाहिनी, काहु कि बाई बाँहि ॥[2]

५ अभिसारिका—

अभिसारते कान्त या मन्मथवशंवदा ।
स्वयं अभिसरत्येषा धीरैरुक्ताभिसारिका ॥ [3]

हिन त के मद मदन तें, पिय सो मिले जु धाइ ।
सों कहिए अभिसारिका, बरणी त्रिविधि बनाइ ॥[4]

—जो नायिका काम-वासना से पीडित होकर स्वयं कान्त के पास जाती है या उसे अपने पास बुला लेती है, उसे अभिसारिका कहते हैं। दयाराम ने इसके तीन भेद माने हैं। इन तीनों के सुन्दर उदाहरण उन्होंने प्रस्तुत किये हैं।

१ कृष्णाभिसारिका—

कृष्ण पक्ष की रात में जो प्रिय से मिलने जाती है, उसे कृष्णाभिसारिका कहते हैं। दयाराम की कृष्णाभिसारिका काली साड़ी पहनकर अमावस्या की अँधेरी रात में अभिसार के लिए जाती है। लेकिन उसकी गोर-देह-द्युति बादल से ढँके चाँद की तरह बार-बार झलक उठती है —

कारी कारी कुहु छपा, छुपत छुपत जात द्रुम ओट ।
दुरि न रहे द्युति देह तहु, ज्यों ससि बदरा गोट ॥[5]

---

१ 'रसिकप्रिया' केशवदास ७/७ ।
२ 'दयाराम सतसई' सं० डॉ० नागर, छंद १८६ ।
३ 'साहित्य दर्पण' विश्वनाथ ३/८६ ।
४ 'रसिकप्रिया' केशवदास ७/२७ ।
५ 'दयाराम सतसई' स० डॉ० नागर, छंद १६० ।

२ ज्योत्स्नाभिसारिका—

चाँदनी रात मे अभिसरण करने वाली नायिका ज्योत्स्नाभिसारिका (शुक्लाभिसारिका) कहलाती है। बिहारी की ज्योत्स्नाभिसारिका तो केवल चाँदनी रात मे भौंरो के द्वारा ही जानी जाती है। दयाराम की नायिका तो चाँदनी रात मे सीप का मोती बन गई —

चमकी चहुँ दिस चदनी, गौरी धरि सित वास।
मुक्त सुक्ति लो मनि चली, कुंज सदन पिउ पास ॥[1]

३ दिवाभिसारिका—

दिन मे जो अभिसरण करती है, उसे दिवाभिसारिका कहते हैं—

अर्जुना भरन अराम्बर, कनक लता सो अग।
अभिजित वय आभिरसुता, मिलन चली श्रीरग ॥[2]

६ वासकसज्जा—

—जब नायिका साज-शृङ्गार करके प्रिय की प्रतीक्षा मे रत रहती है, तब वह वासकसज्जा कहलाती है। दयाराम ने इसका एक उदाहरण दिया है, जो बहुत अच्छा नही है —

मलिन नलिन हिय तल्प मो, तल्प मास कुमलाय।
साज आज बिन काज मो, अजहुँ न आये आप ॥[3]

७ विप्रलब्धा—

प्रिय कृत्वापि सकेत यस्या नायाति सन्निधिम्।
विप्रलब्धा तु सा ज्ञेया नितान्तमवमानिता ॥[4]

दूती सो सकेत बदि, लेन पठाई आप।
लब्ध विप्र सो जानिए, अन आये सन्ताप ॥[5]

—सकेत करने पर भी नायक जिसके समीप नही आता है, उस अपमानिता नायिका को विप्रलब्धा कहते हैं। यह बडी नाजुक स्थिति मे पडी

---

१ 'दयाराम सतसई' स० डा० नागर, छद १६७।
२ वही, छद १६०।
३ वही, छद १६८।
४ 'साहित्य दर्पण' विश्वनाथ, ३/६५।
५ 'रसिकप्रिया' केशवदास, ७/२२।

नायिका होती है। प्रिय आने वाले हैं। संकेत-स्थल पर पहुँच गई। परन्तु प्रियतम को वहाँ न देखकर रंग पीला पड गया —

लखें न लाल सहेट में ललना लाल अनूप।
सो तनु रंग अनंग डर, जातरूप को रूप ॥[1]

८ स्वाधीनपतिका—

कान्तो रतिगुणाकृष्टो न जहाति यदन्तिकम।
विचित्र विभ्रमासक्ता सा स्यात् स्वाधीनभर्तृका ॥[2]
मन बच कृत करिकें सदा, पीव जासु बस होइ।
पूरन रसमय निरखिये, स्वाधिनपतिका सोइ ॥[3]

—जिस नायिका का प्रिय सर्वदा उसके समीप रहता है और हमेशा उसकी अधीनता स्वीकार करता है, वह नायिका स्वाधीनपतिका कहलाती है।

अलि भलि बलि पतिया पती, बोलन दूजे जाहि।
सो का आगें आँघ पियु, अपे आवें नाहि ॥[4]

९ प्रवत्स्यत्पतिका—

जिस नायिका के पति शीघ्र ही परदेश जाने वाले हों, उसे प्रवत्स्यत् पतिका नायिका कहते हैं—

पिय विदेश जाओ चहे, तजि सुबास निहि काल।
गहें सोच उर सुन्दरी, प्रवसतपतिका हाल ॥[5]
कलपि न कल पलका पल, पलक अलि क्षति मेरि।
प्रान प्रान कल जान मो, प्रान जात नहि बेरि ॥[6]

—प्रिय विदेश जा रहे हैं। नायिका उद्विग्न है। पलंग पर पलभर के लिए भी पलकें नहीं लग रही हैं।

---

१ 'दयाराम सतसई' सं० डा० नागर, छन्द १९९।
२ 'साहित्य दर्पण' विश्वनाथ ३/८७।
३ 'हिततरंगिणी' कृपाराम, छन्द ३२०।
४ 'दयाराम सतसई' सं० डॉ० नागर, छन्द १९५।
५ 'हिततरंगिणी' कृपाराम ५/३६३।
६ 'दयाराम सतसई' सं० डॉ० नागर, छन्द २०१।

१० आगमपतिका—

जिस नायिका के पति विदेश से आ रहे हों या आ गये हों, उसे आगत-पतिका या आगमपतिका कहते हैं।

जाको पति परदेस तें, आवे वा छिन धाम।
कृपाराम स्वागतप्रिया, होति वहे अभिराम ॥[1]

प्रिय का पत्र आया है। प्रिय अब आने वाले हैं। यह शकुन तो पहले ही कौए ने दे दिया था। इसलिए 'कागद' अब कोई 'गद' (दवा) नहीं है। अब तो प्रियतम के स्पर्श के लिए अंग-अंग उफना जा रहा है —

कागद का गद राधिका, काग हुए जो सौन।
सरकन सरकें कंचुकी, परसन को पियपान ॥[2]

× × ×

पिव पधारे सुनत पिय, सबैं उठो सह नेम।
बैठ मन निज निलय तन, मनि मंडन युत हेम ॥[3]

(इ) दशा के अनुसार नायिका-भेद—

इस वर्ग के अन्तर्गत नायिकाओं के तीन वर्ग माने जाते हैं—१ अन्य-सभोग-दुःखिता, २ गर्विता और ३ मानवती। 'दयाराम सतसई' में मानवती नायिका को विशेष महत्व दिया गया है।

मानवती—

मान करने वाली नायिका मानवती कहलाती है—

पिय सों कछु अपराध लखि, तिय उदास जो होइ।
ताहि मानिनी कहत हैं, सब पण्डित कवि लोइ ॥[4]

मान स्त्रियों का सबसे बड़ा हथियार है। प्रियतम के अपराध या अपनी अवहेलना से स्त्री में जो चीज पैदा होती है, वह मान है। मान रोष या क्रोध से अलग है। मान बाहरी दिखावा है, जो प्रीति की इमारत को पुरानी

---

१ 'हिततरंगिणी' कृपाराम ५/३६४।
२ 'दयाराम सतसई' सं० डा० नागर, छंद २०२।
३ वही, छन्द २०३।
४ 'रसप्रबोध' रसलीन, छन्द ३५१।

नही होने देता है। मान का मोचन सुगम की ओर ले जाता है। मानवती नायिका दो मनोस्थितियो से गुजरती है—१ प्रेम २ अमर्ष।

दयाराम ने विरह की भाँति मान का विशद चित्रण किया है। वे मान को 'मिसरी' मानते हैं, जो देखने मे कठोर है और चखने पर पिघलन वाली मधुरता से पूर्ण होती है —

मिसरी मान समान, परसत दरस कठोर कछु।
पै रस रूपहि जान, वदन समुख मे डारियें।[1]

नायिका मान किए बैठी है। मुँह फुलाया है। सखि उससे कहती है—देखो, पति पैरो पर नतमस्तक है। मान जाओ, मौन छोडो—

मान तजें जिन मौन तज, मान इतो वच मोर।
भेट करो लखि ललन प्रिय, मोसन पद तोर ॥[2]

हे सयानी, समझ, हृदय मे तू है, तेरा ही नाम रटा जा रहा है। उनके नेत्रों से आसुओ की धारा बह रही है। मान छोड दें—

राधे छब पिय हिय मे, आनन हैं तुव नाम।
सोई उलट दृगतें चलें, समुझ सयानी बाम ॥[3]

तू ही उलटी होकर धारा (राधा) के रूप मे आँखो से प्रकट हो रही है।

मान है, परन्तु प्रियतम का अप्रिय हो रहा हो तो मान की क्या जरूरत? मानिनी सौत है। गुस्से के कारण नाक से नथ निकाल दी। प्रियतम ने हजार अनुनय-विनय की, मानिनी टस से मस नही होती। परन्तु प्रिय ने छींक खाई। मानिनी को लगा कि कहा दुश्मना की तबीयत नासाज तो नही है? तुरन्त नथ पहन ली। पति की कुशलता गुस्से से पहले —

मान न एहु म टरयौं, का मन प्रीति बिसारि।
कैतव छिक्का खाइ पिय, द्रुत नथ पहरी प्यारि ॥[4]

---

१ 'दयाराम सतसई' स० डा० अम्बाशकर नागर, छन्द २२१।
२ वही, छन्द २१०।
३ वही, छन्द २१२।
४ वही, छन्द २११।

सखी मानिनी को समझाती है कि मान ज्यादा नही रखना चाहिए। मान पान नही है, जो ज्यो-ज्यो पकेगा त्यो-त्यो रस बढ़ेगा —

एरी तेर मत्त कर, मेरी कहि तू मान।
कहा पकें रस बढ़ेगो, मान आहि कछु मान ॥[1]

मानिनी मान किए बैठी है। सखी आती है और कहती है, 'चलो', मानिनी—'कहाँ ?' सखी—'वे बुलाते हैं।' मानिनी—'क्यो ?' सखी—'तुम्हारे बिना उन्हें चैन कहाँ ?' मानिनी—'उनको तो अनेक हैं।' सखी—'पर उनमे रुचि नहीं।' मानिनी—'पर मुकुट पर इतनी सारी मौजूद हैं।' सखी—'राधे, ये तो तुम्हारी परछाइयाँ हैं, छाया है—तुम न मिलो तो तुम्हारी छाया ही रख ली —

चलि, कहाँ ? बोले कौन ? पिय, क्यो ? तो बिन कल नाँहि।
धनि हैं, रुचि नहि, मौलि राखि, राधे वे तुव छाँहि ॥[2]

मान और उसका निराकरण कलाकार दयाराम की तूलिका से मूर्तिमान हो उठे हैं।

मान की विशेषता ही यह है कि वह अधिक नही ठहरता। कितना ही बड़ा मान हो, प्रिय की एक झलक से वह उड जाता है —

तदपि लाल सो लग्न, जदपि मन है नपुंसक।
क्यों न मान हुइ मग्न, वे नटवर हो कामिनी ॥

× × ×

मान अधीन अति रसिक, सबसौं रसिकेश मिल्यौ जु।
गव भरी इक हौं रही, मेरौं कछु न चल्यो जु ॥[3]

दयाराम ने नायिका भेद का बहुत विस्तार नही किया है। साहित्यिक छटा के अनुकूल नायिकाओ की विभिन्न स्थितियो का चित्रण ही उन्होंने किया है। विरहिणी, मानवती और परकीया के चित्रण मे उनका मन खूब रमा है। अवस्थानुसार आठ नायिकाओ के स्थान पर उन्होंने परवर्ती आचार्यों

---

१ 'दयाराम सतसई' स० डॉ० अम्बाशंकर नागर, छन्द २१६।
२ वही, छन्द २१७।
३ वही, छन्द २२०, २१६।

द्वारा स्वीकृत दो भेद और जोड़कर दस प्रकार की नायिकाओ का वर्णन किया है। कला की दृष्टि से दयाराम का नायिका-भेद हृदय और सुरुचिपूर्ण है। मन स्थितियो के चित्रण मे वे पूर्णत सफल हुए हैं। दुविधा भरी परकीया की एक झलक देखिए —

ठारे आगन लाल मो, मन डरपे ललचाय।
आजे एकम लों न कछु, आउ जाउ कहि जाय ॥[1]

'डरपे', 'ललचाय', 'आउ', 'जाउ' दुविधा के सूचक हैं। गोपिका घर मे हैं। कृष्ण आगन मे खड़े हैं। अन्य लोग भी हैं। कुछ कहने के लिए मन ललचाता है, कुछ कहने से डरती भी है। वह न 'आओ' कह सकती है न 'जाओ' कह सकती है। कालिदास की पार्वती की तरह—शैलाधिराज तनया न ययौ न तस्थौ ('कुमार सभव', पाँचवाँ सर्ग)।[2]

---

१ 'दयाराम सतसई' स० डॉ० अम्बाशकर नागर, छद २४८।
२ कुमारसभव, पाचवाँ सर्ग

१० नीति-काव्य

प्राचीन और मध्यकालीन काव्य मे सूक्तियो का अपना विशेष महत्व रहा है। इनके कुछ विषय भी रूढ हो गए थे। डा० नागरजी के शब्दो मे कहे तो—"सूक्तियो के कुछ विषय रूढ हो चले थे, जिन पर प्राय सभी कवि अपनी अपनी सूझ-बूझ के अनुसार कहते चलते थे।"[1] भर्तृहरि, अमरुक, रहीम, तुलसी, विहारी, मतिराम और वृन्द आदि कवियो ने अपने अनुभवो को अपनी अपनी सूझ-बूझ के अनुसार प्रकट किया है। आज भी इनकी सूक्तिया लोक-व्यवहार मे बारम्बार उच्चरित होती हैं। दयाराम भी इसी परम्परा म आते हैं। उनका यायावरीय जीवन अनेक अनुभवो से जुडा था। कथा-वाचक और निपुण गायक होने के कारण जीवन के अनुभवो को व्यक्त करने का उन्हे अधिकाधिक मौका मिला होगा। इन सबका सचय सतसई मे हुआ है।

रहीम के नीति परक दोहे तो अनुभव की आँच पर तपे हैं। दयाराम के अनुभव भी यथार्थ की आच पर पके प्रतीत होते हैं। इसमे पारम्परिकता होते हुए भी तत्कालीन जीवन की अनेक सच्चाइयो को बिना लाग-लपेट कहने का प्रयत्न किया गया है। इनमे न आडम्बर का आच्छादन है और न आग्रह की भूमिका। जो जैसा है उसे वैसा ही प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

दयाराम कहते हैं कि शास्त्र और परम्परा के अनुसार 'जो जैसा करेगा वैसा भरेगा' का विधान सत्य नही है क्योकि दुष्ट फूलते-फलते रहते हैं और साधु उजडते रहते हैं। बकासुर को सुगति मिली जबकि उसने श्रीकृष्ण को जहर दिया था।

> दें सो पावे बेद वच, यें क्यो कहियें सत्य।
> बकि माधो माहुर दयो, कस पाई सुभ गत्य ॥[2]
> ब्रह्म कहें भगवन हू दें फल भाव-प्रमान।
> हरिये सर व्याध दें लह्यो सतन सुरथान ॥

---

१ दयाराम सतसई, भूमिका, पृ० ५३।
२ वही, दो० ४८१-८२।

बडे आदमी उपदेश देते है। उनकी 'कथनी' का विश्वास करो, उनकी 'करनी' का अनुकरण न करो—

करबि खरी बहव खरी, करनो करनि न सन्त।
रषभ बानि मानि श्रे लह्यो, अशिव कृति अरिहत ॥[1]

भगवान् ऋषभ की वाणी का जिन्होने अनुकरण किया उन्हे श्रेय मिला, परन्तु अरिहत ने उनकी कथनी को छोडकर 'करनी' का अनुसरण किया उसे अमगल का शिकार होना पडा।

देखिए कार्यकारण का नियम अटूट माना जाता है। यह भी सत्य नही है। दयाराम कहते हैं—पिता कारण है पुत्र कार्य है। परन्तु पिता के समान पुत्र नही होता है। नम्र उग्रसेन से क्रूर कस हुआ, और प्रजावत्सल पृथु से बेलगाम बेन हुआ। जहरीले साप मे ज्योतिपुज मणि रहती है और प्रकाश धर्मा दीपक से काजल पैदा होता है—

कारन ते कारज न किस पुत्र हु सब पितुसेन।
मनि अहि सों किन दीप मिस उग्र कस प्रथु बेन ॥[2]

ससार में श्रम का महत्व है। कार्यशीलता ही अक्षय पूजी है। जिसे चलाना आता है उसकी तलवार होती है, जो पालता है उसका धन होता है, जो पढता है उसकी विद्या होती है और जो पूजा करता है उसका भगवान होता है—

जिन मार्यो ताको असि, पार्यो ताको ध्रहु।
ताको विद्या जिन पढ़ी भजें थाहि कें ब्रह्म ॥[3]

ऋण या कर्ज समाज की बडी समस्या है। कर्ज का घाव नासूर बन जाता है। दयाराम कहते हैं कि कर्ज का घाव तो सिंह पजे से किये गए घाव से अधिक दुःख दायक होता है। सिंह के पजे का घाव एक बार ही पीडा देकर ठीक हो जाता है, कर्ज का पजा तो फैलता ही रहता है—

बेसों करज निहारि दुख, जेसो करज नहार।
पें कछु पल यह रटत द्रुत, यह न हार विस्तार ॥[4]

---

१ दयाराम सतसई, दो० १८१।
२ वही, दो० ६४५।
३ वही, दोहा ५०३।
४ वही, दोहा ६८१।

कर्ज की मार बड़ी पैनी होती है। घायलोंक हर जगह होते है।

उत्तम, मध्यम और अधम पुरुषो की कृपा और क्रोध लोम-प्रतिलोम से रेशम, सूत और रजाइ की गाँठों के समान होते है। उत्तम जन की कृपा रेशम की गाँठ की तरह होती है जो एक बार पड गई तो मुश्किल से खुलती है। मध्यम पुरुष की कृपा सूत की गाँठ की तरह होती है जो समय आने पर खुल सकती है। अधम पुरुषो की कृपा तो रजाई की गाँठ है, जरा सी ढील दी तो अलग अथग। इसी तरह उल्टे क्रम से इन तीनो का क्रोध भी है। उत्तम की रीस रजाई की गाठ, मध्यम की सूत की गाँठ और अधम की रेशम की गाँठ के समान होती है।

उत्तम मध्यम अधम की कृपा रीस अस भाइ।
गाँठि लोम प्रतिलोम जिमि पाट, दुकूल, रजाइ ॥[1]

सता के क्रिया कलापा पर ध्यान नही देना चाहिये। उनके रसभोग पर शका नही करनी चाहिए। उनका स्तर सामान्य जन से अलग होता है। वे सब रसो का आस्वाद लेते हुए भी उनके प्रभाव से अलिप्त रहते हैं। देखिए जीभ जठराग्नि के प्रभाव से निलिप्त रहती है, जठराग्नि सबको पचा देती है।

सब रस भोगे सत कबू, तहू रहे निष्पाय।
स्निग्ध पगी रसना जिमि, अलेप अगन परताप ॥[2]

बडे जो कुछ करते है सोच समझकर ही करते हैं। इसलिये उनके कार्यों के प्रति शका नही करनी चाहिये। ब्रह्मा ने बेटी पर मन लगाया तो उसका भी कुछ कारण होगा ही—

बड करें सब समुझि के भूले नहि को ठोर।
विधि बेटा पे चित्त धर्यो नहि कछु कारन ओर ॥[3]

जीवन म विवेक का बडा महत्व है। विवेकहीन कम निष्फल होते हैं। खच भी करता हो तो विवक से करना चाहिए। वसी पर केवल फूक मारकर ही सगीत पैदा नही होता है उसम अगुलियो का शिल्प भी आवश्यक है—

बिन विवेक बसु व्यय कियें, शोभा कोउ न पाय।
फूकी बसुरी रस न ज्यों, अगुरी बिना लगाय ॥[4]

---

१ दयाराम सतसई, दोहा ८४२।

२ वही, दोहा ६०८।

३ वही, २७८।

४ वही, ३६६।

दयाराम कहते हैं प्रीति जोडनी चाहिए परन्तु इसमे प्रकृति का भी ध्यान रखना चाहिए। प्रकृति के मिले विना जो प्रीति जुडती है वह द्विधा पैदा करती है जसे रोटी और गडेरी एक साथ खाने मे क्या थूका जाय और क्या निगला जाय की दुविधा पैदा हो जाती है—

प्रीति जुरि प्रकृति न मिली, वह दुहु पच दुख पाय।
रोटी गडेरी चयो, क्यों डारे क्यों खाय॥[1]

ना कहना बडा कठिन होता है। 'ना' कहने से तुरत कटुता आ जाती है। लोग बुरा मान जाते हैं परन्तु दयाराम 'ना' कहने के पक्षपाती हैं। व समझते हैं कि न कहने मे तुरत बुराई अवश्य है। परन्तु जिस 'ना' का परिणाम भला हो उसको कहने म सकोच नही करना चाहिए—'कठ कटे पर कटु न कहे यह सयानी रीत नहीं है।'

तनक बुराई तुरत भल, जामे अति परिनाम।
कठ कटे कटु ना कहे, सो न सयानो काम॥[2]

कथनी स करनी वरेण्य है। कबीर भी करनी के पक्षपाती थे। कोरी कथनी मे विश्वास नही करते हैं। कथनी से कुछ सफल नहीं है जसे 'लाख मन अगार' लिखने स आग पैदा नहीं होती है—

कथनी कोरी न काम की, करनी रच हु सार।
उडे न बाद कारियें, लखि लखमन अगार॥[3]

अह अहमिका उचित नही है। गुप्तरूप से कार्य करने मे प्रभावी बना जा सकता है। गधा 'हा-हा' (अह अह) करता है इसलिये उस पर बोझ लादा जाता है। मैन (कामदव) 'मैं-न मैं न' (अहता-त्याग) कहकर प्रभावशाली बन जाता है। नरनारी उसके अधीन हो जाते हैं—

हों हो हो रासभ करें, बोज ढोय सहि प्रहार।
मे न नाम ही भाग्र सब, स्मर के बस ससार॥[4]

किसी को समझाने के लिये उदाहरण या दृष्टान्त बडी उपयोगी चीज है कथावाचक या लोकगायक उदाहरणा के द्वारा अपनी बात मनवाने म समर्थ

१ दयाराम सतसई, दोहा ६४२।
२ वही, दोहा ४८६।
३ वही, दोहा २८५।
४ वही, दोहा ४३६।

होते हैं। दयाराम कहते हैं—उदाहरण तो उपनयन हैं जिससे वृद्धों को भी स्पष्ट दिखाई देता है। चश्मा छोटी से छोटी वस्तु को नयन-गम्य बनाते हैं। उदाहरण से बात को स्पष्ट करते हुए कहते हैं—

कछु मति कूट सिद्धान्त में दे दृष्टान्त बताय।
अनु अच्छर उपनयन जिमि दे फुट वृद्ध दिखाय ॥[१]

संसार में हर वस्तु का अपना अपना वातावरण होता है। सजातीय वस्तुएं कठिनाई होने पर भी एक साथ रह सकती हैं। विजातीय वस्तुओं का उनमें समावेश नहीं हो सकता है। तूणीर में यदि वह सम्पूर्ण भरा हो तो भी एक-दो तीर उसमें घुसाए जा सकते हैं परन्तु जगह होने पर भी धनुष का समावेश वहां नहीं हो सकता है—

मिलि सजाती हैं सजातो, एक बिजाति न भास।
सभर तून सर और हैं, सकत धनुष न समाय ॥[२]

काम पड़ने पर ही सबका स्वरूप ज्ञात होता है, वाणी से ही सबका मूल्य आंका जाता है। वाणी के द्वारा ही राजा, अधिकारी और गुलाम की पहचान होती है—

काम परें ते सबन को, जान्यो जाय स्वरूप।
मोल बोल श्रुति तें मिलें, रक, मोष बड भूप ॥[३]

पेट बड़ी बला होती है। सब अंगों से इसकी मार बड़ी होती है। पेट के ही कारण सब कुछ करना पड़ता है। दयाराम पेट की लाचारी को पहचानते थे—

नाथ उदर नाहक दियो, मल कर पाद श्रुति वाक्।
एक याहि लगि जात सब, धर्म, तेज, बल, नाक ॥[४]

हाथ, पैर, कान और वाणी तो अपनी अपनी जगह ठीक है। परन्तु एक पेट के ही कारण धर्म, तेज, बल और प्रतिष्ठा जाती रहती है। पेट के ही कारण भूख लगती है और भूखा आदमी गजब ढा देता है। 'बुभुक्षित किं न करोति पाप।' जो आदमी बरछे भाले और तलवारों के सामने गर्दन नहीं

१ दयाराम सतसई, दोहा ४९५।
२ वही, दोहा ५६३।
३ वही, दोहा ५८४।
४ वही, दोहा ५१४।

झुकाते हैं वे करछी की मार के सामने आत्मसमर्पण कर देते हैं। भीष्म जैसे महवीर भी करछी के सामने झुक जाते हैं—

जो न बरछी तरछी डरें मरें सु करछी मार।
देखौ यह भट भीसम से, कौरौं किय बस आहार ॥[1]

विरह भी बड़ा विचित्र होता है। अन्य रोग उपचार करने पर शांत हो जाते हैं। विरह तो तप्त तेल के समान है, ठंडा करने के लिए शीतल जल के छींटे मारो तो आग धधक उठती है। विरह भी उपचार करने पर बढ़ता ही रहता है—

विरहानल उपचारतें बढ़े अनोखी चाल।
पय परसत ज्यौं उठत बढ़ तप्त तल ते ज्वाल ॥[2]

लक्ष्मी और सरस्वती एक साथ नहीं रहती हैं। जहाँ धन है वहाँ बुद्धि के लिए मैदान खाली नहीं रहता है, और जहाँ बुद्धि का विलास फैला रहता है वहाँ धन का प्रसार अटक जाता है। बुद्धि स धन नहीं मिलता है और बुद्धि धन से नहीं पाई जाती है। धनी हमेशा जड़ रहता है और दरिद्री में सवेदनशीलता की मात्रा अधिक ही रहती है—

बुद्धि मिलें न दाम तें, बुद्धि तें मिलें न दाम।
नांतर धनि जड़ क्यों रहें क्यों दरिद्री धी धाम ॥[3]

दयाराम कहते हैं—ग्रहबल का महत्व प्रतिपादन करने वाले अज्ञान हैं। यदि ग्रहबल होता तो रावण के हाथो नवग्रह पराजित क्यों होते? अत ससार मे जो कुछ होता ह वह हरि की इच्छा से होता है ग्रहो के बल से या अन्य बल से कुछ नहीं होता है।

जो कहि ग्रह को जुख दुखद मैं कहुँ ताहि अयान।
रावन बाँधे मौन कूँ, बिन रामदायक कौन ॥[4]

पाप कर्म अच्छा नहीं हैं क्योंकि एक पाप अन्य पापों की शृंखला की ओर ले जाता है। इसी से पाप बढ़ते जाते हैं, संताप बढ़ता जाता है—

---

१ दयाराम सतसई, दोहा ६६१।
२ वही, दोहा ५७६।
३ वही, छंद ६०१।
४ वही, छंद ५८७।

जानि पाप करिये न कछु पाप ताप के त्याय।
तासु पाप फिरि ताप यह सबल तूट न पाय ॥[1]

नारी सदव पुरुष के लिये एक पहेली रही है। सन्तों ने उसे 'नरक की खान' बताया है। भर्तृहरि ने नारी की रहस्यमयता को देवो के लिये भी अगम्य बताया है—स्त्रिय चरित पुरुषस्य भाग्य दैवो न जानाति कुतः मनुष्य ।" दयाराम उसे क्षोभकारक समझते हैं। नारी बिना विचारे काम करती है। छल कपट, निर्दयता, असत्य, अपवित्रता, जडता उसके स्वभाव से जुडे हुए होते हैं—इसीलिए उसका सग क्षोभ कारक है।

सहसा, माया, निदया, असुचि, अनृत, जड लोभ।
इते दोष तिय स्वाभाविक क्यों न सग तस क्षोभ ॥[2]

हृदय के भाव भी समय के साथ बदलते रहते हैं। जो भाव किसी समय सुख देते थे वे अब दुख देते हैं। औषधि भी अनुपान भेद से बदलती रहती है। औषधि और भाव भी परिवेष के साथ प्रभाव बदलते रहते हैं—

सोखद सो सो खद भये, यह दिन दिन न प्रभाव।
और और अनुपान तें, भेषज ज्यों हिय भाव ॥[3]

पराक्रम बडा होता है, शरीर का कद नहीं। देखिए छोटे शरीर वाला पर पराक्रमी सिंह दीर्घ देही हाथी को मार डालता है—

बडो वोय विग्रह नहीं, कुरु कोविद अनुमान।
दीर्घ देह सबतें करी, हरि लेत पल प्रान ॥[4]

अधर्म का पक्ष लेना उचित नहीं है। इससे तुच्छता ही प्रगट होती है। चाँदनी को जबरदस्ती से धूप कहा जाय तो वह धूप तो नहीं बन सकती है। केवल कहने वाला ही झूठा साबित होता है—

धरम पछ छ न कीजियें, तुच्छ दिखें निज रूप।[5]
बरबट कहि को कौमुदी, धूप सु ठरे न धूप ॥

---

१ दयाराम सतसई, छद ५६२।
२ वही, छद ४२०।
३ वही, छद ४०१।
४ वही, छद ३९४।
५ वही, छन्द ५८४।

प्रियजनो का साथ दो ही देते हैं—एक पाती दूसरी दूती । पाती दूती से अधिक विश्वस्त होती है । पाती बात गुप्त रखती है, सच्ची होती है, अमानी होती है, गभीर होती ह और सहज म ही हित की अनक बातें करती है ।

दुति न दुतिय को पानि सो, छानि बानि कहि मीत ।
सांची, अमहो, गम्भीर अति, सहज करैं यहु हीत ।।[1]

दूती पाती स उत्कृष्ट है । दूती हमशा सत्य नही कहती है । पूछो अमरुक शतक की दूती को जो नायिका द्वारा 'प्रिय' के पास भेजी गई थी, परन्तु आन पर उसन कहा, मैं तो 'वापी' नहाकर आई हूँ, 'प्रिय' के पास गई नही ।* पाती हमेशा सच कहती है । दूती म अभिमान होता है, पाती अभिमान से दूर रहती है । दूती चचल होती है, पाती गभीर । दूती पुरस्कार चाहती है, पाती बदले म कुछ नही लेती ।

शुभ कामना तप स बडी चीज है । वसुदेव और देवकी ने सतान प्राप्ति के लिए बडा तप किया था । उन्ह कृष्ण रूप म पुत्र मिला । परन्तु नन्द-यशोदा को तो केवल शुभ-कामना-आशीर्वाद स ही पुत्र-सुख का लाभ मिला—

बड असीस बड तपहुँ ते, कहिं सेहू अनुमान ।
जननी जनक जुग कृष्ण के, तारतम्य सुखदान ।।[2]

सुख का समय व्यतीत होने पर देर नही लगती है । परन्तु दुख का समय पर्वत की तरह लम्बा चौडा लगता है । कृष्ण पक्ष और शुक्ल पक्ष दोनों का कार्य-काल समान होने पर भी पक्ष समाप्त होते देर नही लगती है और कृष्ण पक्ष बडा लम्बा मालूम पडता है । सुख म समय की गति तेज लगती है, दुख मे समय के पैर लोहे के लगते हैं ।

---

१ दयाराम सतसई, छन्द ५८८ ।
२ वही, छन्द ५८३ ।

* निश्शेषच्युत चन्दन स्तनतट निर्मृष्टरागोऽधरो ।
नेत्रे दूरमनञ्जने पुलकिता तन्वी तवेय तनु ।।
मिथ्यावादिनी दूति बान्धवजनस्या ज्ञातपीडागमे ।
वापीं स्नातुमितो गतासि न पुनस्तस्याधमस्यान्तिकम् ।।

दुखद लगें सुख समय अति, त्यों दुख उलट प्रमान ।
जानि परें नहिं अमल पछ, लागे समल महान ।।[1]

किसी भी काम में अति नहीं करनी चाहिए। अति घर्षण से शीतल चन्दन भी अग्निकणों को पैदा कर देता है—

किये बाँस सन्ताप कबु, सीत हू कू होइ रोस ।
अति घरसन ते होत ज्यिमि, चन्दन चिनगिन दोस ।।[2]

झूठ बोलने में खतरा रहता है और साँच को आँच नहीं आती है। झूठ और सच के बीच का अन्तर दिखाई देता है जैसे काँच और मणि के बीच का—

जोखिम जूठ सदा बनो, नहीं साँच कबु आँच ।
सुरत दिखें कछु अन्त सह, मनि-मनि काँच सुकाच ।।[3]

कीमत गुणवान की होती है, रूपवान की नहीं। खूब सूरत रक्तिम इन्द्रायण की कोई कीमत नहीं करता है, काली कस्तूरी लाखों के मोल बिकती है—

रूपवन्त सहू गुनरहित, तज भज गुनि बिन रूप ।
इन्द्र बायना अरन का, म्रगमद असित अनूप ।।[4]

नीति-शास्त्र में कहा गया है कि 'मीत का मीत' मित्र होता है परन्तु जगत् में कुछ ऐसी विचित्र स्थिति है कि मीत का मीत भी शत्रु हो जाता है। देखिए—

मीत मीत सहजहिं अरी, अरि अरि सहज हि मीत ।
बाली बर सुग्रीव को, कवि मयक कहा होत ।।[5]

बाली सुग्रीव की पत्नी रुमा का मित्र था। इसलिए सुग्रीव से बाली की शत्रुता थी। चन्द्रमा ने देवगुरु बृहस्पति की पत्नी तारा से प्रेम किया था। बृहस्पति का वैर शुक्राचार्य से था अतः चन्द्रमा शुक्राचार्य का मित्र बन गया।

संसार में सभी वस्तुओं का अपना अपना अलग महत्व होता है। छोटी वस्तु भी अपनी जगह महत्वपूर्ण है—

---

१ दयाराम सतसई, छन्द ५८३। २ वही, ३३६।
३ वही, ५८२। ४ वही, ५७७।
५ वही, ५१५।

ऊँच अवच बड छोट कति, बनि तासों अनु ओर ।
सोसी, पन हो, असि, धुरी मलें सबें निज ठौर ।।[1]

इस प्रकार दयाराम का अनुभव का क्षेत्र विशाल है। उनकी सूक्तियाँ जीवन के प्रत्येक पहलू को छूती हैं। दयाराम की निरीक्षण शक्ति बड़ी पैनी और गहरी है। सामान्यतया सूक्तियों के विषय परम्परागत ही होते हैं। परन्तु इन परम्परागत विषयों पर भी उन्होंने अपनी मौलिक सूझ-बूझ का परिचय दिया है। परम्परागत अभिव्यक्तियों की जगह उन्होंने नये ढंग से अपनी बातें सामने रखी हैं। सन्त परोपकारी होते हैं, उनका हृदय मुलायम होता है। परन्तु दयाराम एक मार्मिक बात कह देते हैं—

नो नित ते हूँ म्हा मृदु, सदा सन्त का उर ।
वे पिघलत पावक परस, ये सुनि पर दुख दूर ।।[2]

नवनीत को मृदुतम, मसृणतम कहा जाता है लेकिन उसे पिघलाने के लिए पावक की आवश्यकता मानी जाती है। सन्त का हृदय तो दूर की कातरवाणी के श्रवणमात्र से द्रवीभूत हो उठता है। सन्त के हृदय की कोमलता को काव्यलिंग के द्वारा प्रतिपादित किया गया है।

होनहार का अन्दाज पहले से ही लग जाता है। देखिए मोर के बच्चों को। नर मोर को अपने बर्हभार पर गौरव रहता है। इसी से छोटे नर बच्चे चाहे उनके पंख आये हों या नहीं, पानी से गुजरते समय अपनी पूछ को देखते रहते हैं कि कहीं उनकी पूछ गीली न हो गई हो। कन्याएँ भी, चाहे उरोज प्रकट हुए हों या नहीं, पुरुषों को देखते ही पहले से छाती छिपाना सीख जाती हैं—

होनहार हिय में बसे, सितउ बरही के वत्स ।
चलत अबु प्रतिपल लखत, प्रष्ट जदपि नहीं परस ।।
होनहार हुई सो मति प्रकट प्रथम तें होइ ।
ढांपे उर बिन उरजहू कन्या जिमि नर जोइ ।।[3]

अपने-अपने गौरव की समानता इन दोनों में गौरव प्राप्त करने के प्रथम ही सुषुप्त रूप में विद्यमान है।

---

१ दयाराम सतसई, छन्द ४६४।
२ वही, छन्द ३२६।
३ वही, छंद ३७६।

ससार की क्षण-क्षण बदलती परिवर्तनशीलता का सुन्दर चित्र इस दोहे मे सहजता से व्यक्त हुआ है—

> आज मुकालि न अब सुघरी, महे चाल जगख्याल ।
> नममे नभ ज्यों प्रथक पल, सित असित पितलाल ॥[1]

चार घडी की चाँदनी है । जो आज है वह कल नही रहेगा, जो अभी है वह घडी भर बाद बदल जायेगा । ससार तो सावन-भादो का आकाश है कभी श्वत, कभी श्याम, कभी लाल और कभी पीत ।

सावन-भादो के आकाश के रूप मे ससार का हृदय-ग्राही चित्र प्रस्तुत किया है । सावन म आकाश का रूप प्रतिपल बदलता रहता है । इसी तरह ससार कभी शात और स्वच्छ रहता है तो कभी अज्ञान और अशाति का ठोर बन जाता है । कभी दु ख दैन्य से पूरित है तो कभी प्रेम और आनन्द मे निमज्जित ।

अनन्त गुणो के बीच एक दोष की गिनती नही होती है । चन्द्रमा मे अनेक गुण होने के कारण उसका कलक-दोष प्राय तिरोहित हो जाता है । कालिदास न इसी तथ्य का समर्थन करते हुए कहा है—एकोहिदोषो गुणसन्निपाते परन्तु दयाराम इसी बात को प्रबल प्रमाण के साथ प्रस्तुत करते हैं—

> गुन अनन्त मे दोष अनु, सो करि सके न बाध ।
> ज्यो न लोन डलि के मिले, क्षार पयोधि गाध ॥[2]

'क्षार पयोधि' म 'लोन डलि' का कितना अस्तित्व ? 'डलि' और 'गाध' के द्वारा 'अनु' और 'अनन्त' की सुन्दर व्यजना हुई ह । दयाराम ने अपनी बात का समथन करन मे या विधान करन म हमेशा अपनी मौलिकता प्रदर्शित की ह । 'दीपक के नीचे अँधेरा' सामान्य प्रचलित उक्ति है । दयाराम दो दीपको को एकत्र कर इस अन्धेरे को दूर करना चाहते हैं—

> हरैं ओर अज्ञान बुध, ताको फिर बुध ओर ।
> मिलन दीप ज्यों परस्पर, हरैं तिमिर दुहुँ ठौर ॥[3]

---

१ दयाराम सतसई, छन्द ३५३ ।
२ वही, छद स० ६०१ ।
३ वही, स० ४७६ ।

दीप से दीप जलता है—यदि यह एक सत्य है तो दीप से दीप का अन्धेरा दूर होता है—दूसरा सत्य है।

मन बडा चचल होता है। प्रति पल उसका रग बदलता है। मन के रगो के इस वैचित्र्य को दयाराम ने बडी बारिकाई से उरेहा है—

मन विचार पल पल पृथक, अवय सवत कवि कान।
जिमि कुसअनि उपरनि, वरन पलटैं अति भामान ॥[1]

सुबह के समय कुश की नोक पर ओस की बूदें पडी रहती हैं और उन पर सूर्य रश्मियो के पडन से अनेक रग उन बूँदो पर आते-जाते रहते हैं। मन भी ऐसा ही है। चचल मन का एक सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया गया है।

अन्यत्र आसक्त प्रिय पर बरबस ध्यान जाता रहता है। मित्र द्रोही को तो याद नहीं करना चाहिए। फिर भी मन और ध्यान उसकी ओर चले ही जाते हैं। मुह के भीतर कोई अग दुखता हो तो जिह्वा बारम्बार उसका स्पर्श करती रहती है। यह एक अनुभूत सत्य है। दाँतो के बीच कुछ रह गया हो या मुख मे कोई फुसी निकल आई हो तो जीभ बरबस वहाँ चली जाती है।

मित चित जान्यो अनत दुख, दुसह न छूटे ख्याल।
मन गति ह्वां बरज्यो न रहि, ज्यो रसना मुख साल।[2]

ससार श्रद्धा के सहारे चलता है—श्रद्धावान् लभते ज्ञान। जसी श्रद्धा वैसी सिद्धि। दयाराम श्रद्धा का महत्व समझते हैं। श्रद्धा है तो दूर भी निकट है और श्रद्धा नहीं है तो निकट भी दूर है। देखिए गाय के स्तनो के अति निकट रहने वाला जिगोर दूध से वचित रहता है, दूर बधा हुआ बछडा दूर रहते भी दूध का अधिकारी बनता है।

बिन रति का बड निकट तें, नां जिगोंर गोतोर।
निपत लपटि स्तन लहु रगत, लहे दूर बछ खीर ॥[3]

दयाराम की सूक्तियो म उनकी अपनी सूझ-बूझ है, प्रशस्त मौलिकता है। अपने विचारों को परिपुष्ट करने के लिए सामान्य जगत के उपमानो को

---

१ दयाराम सतसई, छद स० ५१३।
२ वही, स० १६६।
३ वही, दोहा।

लेकर दयाराम ने उन्हें मार्मिक और चोटदार बनाया। वास्तव में हमें दयाराम के अधिकारी विद्वान् डॉ० अम्बाशंकर नागर जी के इस विधान से सम्मत होना चाहिए कि 'सूक्तियों में दयाराम की सूझ-बूझ और मौलिकता की दाद देनी पड़ती है।"[1]

दयाराम ने मानव-प्रकृति को लेकर बहुत कुछ कहा है। संगति, सन्त और हरिजन, गुरु, सज्जन-दुर्जन, बड़े लोग, निन्दक, याचक, ज्ञानी-मूर्ख, दूती और पाती, पराधीन और गुलाम, प्रारब्ध और भाग्य, ईश्वरेच्छा, संसार, श्रम, जीवन, मृत्यु, धन, स्वार्थ और परमार्थ, शरणागति, सावधानी, चतुराई, कलियुग, गुण, गरीबी, युक्ति, विवेक, अविद्या, कला, कुकृत्य, मन और मनोवृत्तियाँ, त्याज्य और ग्राह्य आदि को अपनी रचना का विषय बनाया है। कहीं कहीं पर काव्य के माध्यम से उपदेश भी दिए हैं।

वस्तुत दयाराम की नीति विषयक सूक्तियाँ उन्हें हिन्दी के प्रमुख सूक्तिकारों में विशिष्ट स्थान प्रदान करने में समर्थ हैं।

---

१ दयाराम सतसई, भूमिका।

११ ‖ भाषा शैली

दयाराम सतसई की भाषा ब्रजभाषा है। एक गुजराती भाषी कवि ने अपने मन की सम्पूर्ण श्रद्धा के साथ अपनी हृदय धारा को हिन्दी में व्यक्त करने का प्रयास किया है। दयाराम केवल एक अहिन्दी भाषी सज्जन ही नहीं थे अपितु वे अपनी मातृभाषा गुजराती के समर्थ कवि के रूप में ख्याति अर्जित कर चुके थे। अपनी मातृभाषा में विपुल साहित्य सर्जन के साथ उन्होंने देश की तत्कालीन साहित्यिक भाषा में कृष्ण-भक्ति से प्रेरित होकर साहित्य सर्जन का मार्ग अपनाया। यह असाधारण आत्म-विश्वास का काम था। दयाराम ने न केवल भक्तिभाव व्यक्त करने के लिए मनमौज में आकर ब्रजभाषा में लिखा है वरन् सम्पूर्ण साहित्यिक गम्भीरता के साथ उसमें अपनी अनुभूति को अभिव्यक्त करने का सुन्दर प्रयास किया है।

हमारे देश में मध्यकाल तक संस्कृत के प्रति सम्मान की भावना अक्षुण्ण रही है। उसके महत्व को कम आंकने का प्रयत्न प्रायः नहीं हुआ है। देशी भाषाओं के लेखकों में सर्वप्रथम महात्मा कबीर ने संस्कृत को 'कूप जल' कह कर भाषा के बहते नीर में वाणी को प्रक्षालित करने का दावा किया है। सूर और तुलसी चुपचाप अपने काव्य निर्माण में प्रवृत्त रहे। केशव के सामने फिर यह दुविधा खड़ी हुई। संस्कृत में लिखा जाय या भाषा में? संस्कृत का अपार पाण्डित्य होते हुए भी केशव ने ब्रजभाषा के प्रति अपनी आसक्ति प्रकट करते हुए ऊर्ध्वबाहु होकर कहा है —

गीर्वाणवाणीविशेषबुद्धिस्तथापि भाषा रसलोलुपोऽहम्।

केशव ने ब्रजभाषा की डाली पर अपना मन समर्पित कर दिया था। इसलिए उन्होंने जो कुछ लिखा वह ब्रजभाषा में ही लिखा। दयाराम के सामने भी यह प्रश्न था। संस्कृत के प्रति उनके मन में ऊहापोह था। परन्तु दयाराम जानते थे कि संस्कृत में लिखकर या बोलकर जनता में प्रभाव बिखेरा जा सकता है परन्तु जनता तक नहीं पहुँचा जा सकता है। जनता तक पहुँचने के लिए ब्रजभाषा सबसे उपयुक्त है। कृष्ण-भक्तों के लिए तो वह कृष्ण की वाणी है। रसिकों के लिए वह ललित भाव भरी भाषा है।

व्रजभाषा के प्रति दयाराम के प्रेम के कारण स्पष्ट हैं क्योंकि १—लोगो तक पहुँचने के लिए संस्कृत अपर्याप्त है, २—व्रजभाषा लोकग्राह्य है और 3—वह स्वय कृष्ण की वाणी है। शायद अन्त प्रान्तीय भाषा मे संस्कृत की उत्तराधिकारिणी व्रजभाषा हिंदी ही है।

प्रथम कहा जा चुका है कि व्रजभाषा दयाराम की दूसरी भाषा है। उन्हे इस भाषा के अध्ययन की शास्त्रीय सुविधाएँ उपलब्ध न थी। देशाटन के द्वारा साधु-सन्तो के सम्पर्क से और वल्लभ सम्प्रदाय के व्यापक विस्तार से व्रजभाषा का ज्ञान सहज मे उन्हे प्राप्त हुआ था। नाथद्वारा-काकरोली और व्रज मे एक लम्बे अरसे तक उनका आना जाना बना रहा। इसलिए व्रज-भाषियो के प्रत्यक्ष सम्पर्क और सूर और नन्द आदि उत्तम कवियो के साहित्य के श्रवण पठन से उनका व्रज भाषा का अध्ययन विशाल और व्यापक बना। इन स्रोतो से गृहीत दयाराम की व्रजभाषा म इतनी ही विविधता मिलती है।

अपनी व्यापकता के कारण व्रजभाषा मे एकरूपता प्राय शिथिल रही है। उसका कोई ठोस व्याकरण नही था। अनेक भौगोलिक क्षेत्रो मे जन्मे कवियो के द्वारा इसका साहित्यिक प्रयोग किए जाने पर उसम प्रादेशिक या आचलिक प्रभाव भी पडे हैं। दयाराम गुजरात के थे। इसलिए उनकी व्रज-भाषा पर गुजराती उच्चारणो का प्रभाव पडना स्वाभाविक था और साथ ही साथ उसम गुजरात म प्रचलित व्रजभाषा के बोलचाल के रूप का भी सयोजन हुआ है। अत दयाराम की व्रजभाषा मे सामान्यतया निम्नलिखित विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं—

(१) व्रजभाषा मे 'ओ' का उच्चारण 'ओ' और 'औ' के मध्य होता है। इसलिए कुछ कवि केवल 'ओ' से और कुछ 'औ' से इसे व्यक्त करते है। दयाराम ने सर्वत्र 'ओ' का प्रयोग इस उच्चारण के लिए किया है—

> झूठों मो सिर कर धरों, रूठो यो उर लात।
> पै निज औरन पै नहीं, यह जाचो जगतात॥[१]

(२) 'ए' की जगह सर्वत्र 'ऍ' की मात्रा का प्रयोग दयाराम मे मिलता है—

> राज रूप रसपान सुख, समुझत हैं मों नॅन।
> पै न बॅन हे नॅनकों, नॅन नहीं हैं बॅन॥[२]

---

१ दयाराम सतसई—७।
२ वही, १४४।

(३) ब्रजभाषा म 'ऋ' अप्रधान स्वर है। इसके स्थान पर प्राय रि—
(ऋतु< रितु), अर—(गृह> ग्रह), इर—(कृपा> किरपा) का उपयोग
होता है। कुछ शब्दो में 'ऋ' का प्रयोग भी होता है। दयाराम ने प्राय
इन सभी उच्चारणो का प्रयाग किया है—

ऋ = र्   घृत> घ्रत
          भृश> भ्रस

ऋ = रि/रु   ऋण> रिण तथा ऋषि> रुषि
              > रुन

ऋ = इर्   वृंदावन> ब्रिंदावन
           कृपा> क्रिरपा

(४) ब्रजभाषा म सभी स्वरो का सानुनासिक रूप मिलता है। परन्तु दयाराम
ने 'नकारपूव आकार' का सर्वत्र अनुनासिकीकरण किया है—

ऐसो देरो मत करें, मेरी कही चूँ मान।
कहा पर्यें रस बढ़ेंगों, मौंन आहि पछु पान॥[1]

इनके अतिरिक्त दयाराम ने ब्रजभाषा के रूपो म स्वच्छदता से काम
लिया है—
(क) वतनी म ह्रस्व मात्रा को दीर्घ और दीर्घ को ह्रस्व के रूप मे प्रयुक्त
किया है जैसे—गति, गती। असि, असी। मति, मती। अति, अती।
कपूत, कपुत।
(ख) एक ही शब्द के अनेक रूपों का प्रयोग (Variation) हुआ है—
आग = अग्नि / आगि / अगन / अग्न / अगि।
चतुर = च्यातुर / च्यतुर / च्यातूर।
दृष्टि = दीठि / दिष्टी / दीठ / दीठी।
(ग) वग परिवतन—तीसरे वर्ण की जगह पर चोथा और चौथे जगह प
तीसरे वण का प्रयोग किया है—

ध्रुव की जगह पर द्रुव
धूठ   "   " झूठ
ब्रह्म "   " भ्रह्म

---

[1] दयाराम सतसई—२१६।

जहाँ ,, ,, या

वल्लभ ,, ,, वल्लब

जिह्वा ,, ,, जिह्वा

(घ) द्वितीय स्वरान्त वर्ण को हलन्त किया है—

परम> पर्म शरण> सरण> सर्न

जगत> जक्त भरण> भर्न

विपरीत> विप्रीत

(च) पदान्त 'न' को द्वित्व किया है—

धन> धन्न मगन> मगन्न

मन> मन्न जीवन> जीवन्न

तन> तन्न कण (कन)> कन्न

१—गुजराती उच्चारणा के प्रभाव के कारण कुछ शब्दों की वतनी में परिवर्तन हुआ है—

तुमारो—म्हारो, जहर—झेर, गहना—घेना, बोज—बोझ, बहुत—बोत, सके—शके।

२—दयाराम ने शब्दों के आदि मध्य और अन्त के वर्णों का भी लोप किया है—

गरल	को	गर	(अन्त्य 'ल' का लोप)
उदधि	को	उद	(अन्त्य 'धि' का लोप)
आगपा	को	पगा	(आदि 'आ' लोप)
अगाध	को	गाध	(आदि 'अ' लोप)
उदधि	को	दधि	(आदि 'उ' लोप)
सहस्र	को	सस्र	(मध्य 'ह' लोप)
विद्वान	को	विद्वन	(मध्य 'आ' लोप)

३—दयाराम ने शब्दों का अप्रचलित अर्थ तथा कभी-कभी भिन्नार्थ में भी प्रयोग किया है—

(क) अप्रचलित अर्थ में—

कन्या	को	दिशा के अर्थ में	
शक	को	भय	,,
वानवा	को	गणेश	,,

भुज	को	वृक्ष	में अर्थ म
कवोप	को	सागर	,,
वनचर	को	मछली	,,

(ख) भिन्नार्थ मे—

पातर	को	'नम्र' में अर्थ मे
स्तब्ध	को	'घमण्डी' में अर्थ में
दोहद	को	'प्रेम' के अर्थ में

शब्द भण्डार—

दयाराम का शब्द भण्डार विशाल है। ज्ञान-विज्ञान के सभी क्षेत्रों से उन्होंने शब्दों को लिया है। वास्तव में समाज के सभी क्षेत्रों से उन्होंने शब्द राशि एकत्र की है। उसके शब्द-भण्डार में धर्म, दर्शन, पुराण, ज्योतिष, गणित, खेल आदि क्षेत्रों के अनेक शब्द आये हैं। उनके दोहों म भारतीय आर्य भाषा की सभी भूमिकाओं के शब्द मिलते हैं। उनमे तत्सम, अर्ध तत्सम, तद्भव और देशी शब्दों का मुक्तमन से प्रयोग हुआ है।

(१) तत्सम शब्द—

दयाराम ने संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रचुर प्रयोग किया है। कहीं-कहीं पर संस्कृत की समस्त पदावली का भी प्रयोग किया है। 'सतसई' म प्रयुक्त तत्सम शब्दो के कुछ इस प्रकार है—

अभिवादन, अक्षरातीत, पुष्कर, क्रोध, दारु, दुग्ध, पावक, मोक्ष, द्रुम, कुहू, द्युति, मरकट, अनृत, तुण्ड, केकी, तारतम्य, प्रमदा, मूषक, तिमिर, उष्णदा, दस्यु, हस्य, चामिकर, श्रुति, कटाक्ष, वाप, तुल, सर्वेश्वर, कृपण, वरुण, उभव, उद्वेग, वनचर, कन्या, दंड, प्रताप, नूतन, प्राण आदि तत्सम शब्दों के साथ प्रेमामृत, प्रत्युपकार, शिशिरातप, पदपंकज, कृपानिदान, पदपुष्कर सदृश समस्त और संयुक्त शब्दों का प्रयोग भी मिलता है। दयाराम का संस्कृत भाषा पर अच्छा अधिकार था। इसके दर्शन उनके दोहों मे होते हैं।

(२) अर्द्धतत्सम शब्द—

प्राय उच्चारण की सुविधा के लिए तत्सम शब्दों के कुछ वर्ण श्रुति मधुर बनाये जाते है। व्रजभाषा कवियों ने उच्चारण की सुविधा के लिए कुछ तत्सम शब्दों मे परिवर्तन किया है। इस प्रकार परिवर्तित शब्दों को अर्द्धतत्सम कहा गया है—जैसे गोपाल का गुपाल, निपुण का निपुन। दयाराम

ने भी इस प्रकार तत्सम शब्दों को श्रुतिमधुर बनाने का प्रयत्न किया है। इस प्रक्रिया में (१) शब्द मध्यगत और अन्त 'ण' को 'न' में परिवर्तित कर कोमल बनाया गया है—प्राण> प्रान, प्रणत> प्रनत, शरण> सरन, कृपण> कृपन। (२) 'श' के स्थान पर 'स' का प्रयोग कर उसे उच्चारण सुगम किया गया है जैसे—शील> सील, सर्वेश्वर> सर्वेसुर, शिव>सिव। (३) व्यंजन के हलन्त रूप को स्वरान्त में बदला गया है—धर्म> धरम, हार्द>हारद, प्रधान> परधान, प्रताप> परताप।

(३) तद्भव शब्द—

हमारी भाषाओं में तद्भव शब्द अनेक मिलते हैं। इनके अनेक रूप हैं। ये भौगोलिक विशेषताओं से भी जुड़े हैं। एक लम्बा ऐतिहासिक विकास-क्रम और भौगोलिक स्थिति के कारण अनेक तद्भवों के रूप में विद्यमान है। महाभाष्यकार ने भी इस तथ्य को स्वीकारा है। वस्तुतः ये तद्भव ही भाषा की अर्जित सम्पत्ति के द्योतक होते हैं। यद्यपि दयाराम उस भू-भाग में पले न थे जिसमें वे सहज रूप में आ जाते हैं। परन्तु उनके विराट परिभ्रमण ने उन्हें ब्रजभाषा के इन रूपों से परिचित करा दिया था। दयाराम में ऐसे तद्भव पर्याप्त संख्या में मिलते हैं—नाह (नाथ), नेह (स्नेह), मात्र (मात्र), छमा (क्षमा), आग (अग्नि), मीत (मित्र), किसन (कृष्ण), मूरत (मूर्ति), हरी (हरित), मसान (श्मशान), [illegible] ([illegible]), पाहन (पाषाण), बैद (वैद्य), कटाछ (कटाक्ष) आदि।

(५) विदेशी शब्द—

मध्यकाल के अन्त तक अरबी-फारसी के अनेक शब्द हमारी भाषाओं मे घुल-मिल गय थे। परन्तु उनका उत्स अन्यत्र होने से उन्हे विदेशी शब्द ही कहा जायेगा। 'दयाराम सतसई' मे अरबी फारसी शब्दो का स्वाभाविक प्रयोग हुआ है। कुछ शब्द अपने अविकृत रूप मे प्राप्त होते हैं और कुछ शब्द विकृत रूप मे। इनमे गुलाब, चिक, गुनाह, गरीब, दुश्मन, कमान, जख्म, यार, ख्याल अपने वास्तविक रूप मे आये हैं। परन्तु कुछ शब्दो को दयाराम ने स्वेच्छा से तोड़ा मरोड़ा है जैसे—घुनेगार (गुनहगार), अतराजी (एतराज), मुश्केल (मुश्किल), कागद (कागज), गुबाप-ज्वाप (जवाब), इशाक (इश्क) और बिशाक (बशक) तथा मसागत (मशक्कत)।

अरबी-फारसी के कुछ शब्दो को भी उनके प्रचलित अर्थ से भिन्न अर्थ में प्रयुक्त किया गया है यथा 'जाली'। इसका सहज अर्थ है नकली। परन्तु दयाराम ने इसे जाल बिछाने वाले के अर्थ मे प्रयुक्त किया है। 'जाल' अरबी के 'जअल' से सम्बन्ध रखता है। एक शब्द संस्कृत मे 'जाल' है जिसका अर्थ छेददार चीज। परन्तु दयाराम ने अपने अर्थ मे 'जाली' का प्रयोग किया है।

दयाराम ने कुछ अरबी फारसी शब्दों के साथ भारतीय प्रत्यय जोड़े हैं। देखिए—'मरदी' और 'अदरदी' के प्रयोग—

(१) साधन साधि न हों सक्यो, ताको मोहि न ताप।
मरदी हिम हरि दरद की, साधन साध्य न आप ॥११॥

(२) भली अदरदी हरि भये, बिरह दरद हों चूर।
कपूर रहि न बिन मिर्च ज्यों, मिर्च न चाहि कपूर ॥२६६॥

दूसरे दोहे मे मूल फारसी का 'दर्द' शब्द है। 'अ' उपसर्ग और ईं प्रत्यय लगाये गये हैं। प्रकृति फारसी मे उपसर्ग और प्रत्यय भारतीय हैं। इससे आगे बिरह-दरद मे दो भिन्न भाषाओ के शब्दो को एकत्र कर सामासिक पद बनाया है। इसका दूसरा उदाहरण 'सहसदस्त' है—

सब मीठा मासूक कों, बिजानी कहि सांच।
सकल मनोहर सखि लगें, सहसदस्त ज्यों काच ॥१९३॥

यहाँ मूल शब्द सहस्र है। कवि ने मध्यवर्ग का लोप करके सहस के साथ फारसी के दस्त को एकत्र कर सहसदस्त समास निष्पन्न किया है।

दयाराम की भाषा चलती ब्रजभाषा है। उसम अन्य कवियो की अपेक्षा शब्दो के अनेक परिवर्त मिलते हैं। सम्भवतया ये परिवर्त (Variation)

उनके पारावारीय जीवन से जुड़े हुए हैं। जिस अंचल से जो शब्द मिला उसका वैसा ही रूप सतसई की भाषा में प्रयुक्त हुआ। इससे भाषा जानदार भी बनी है और लोक-भोग्य भी। सतसई में जहाँ भक्ति का भाव है भाषा वहाँ पारदर्शक बनी है। भक्त की समस्त वृत्तियाँ उसमें झिलमिलाती हुई सी दिखाई देती हैं। ऐसे अवसरों पर दयाराम की मुहावरेदानी खिलकर सामने आई है। कृष्ण पर उसे पूरी श्रद्धा है, पूरा विश्वास है। यदि कृष्ण कुटिल है तो भक्त का हृदय भी कुटिल होगा ही। जैसी तलवार वैसी म्यान—

चाहु बसाये हृदय में, धरं त्रिभंगी ध्यान।
तातें राख्यो कुटिल उर, होहि असा सों म्यान ॥१८॥

मुहावरे और लोकोक्तियाँ भाषा में जान डालती हैं। वस्तुतः भाषा के ये वक्र प्रयोग हैं जो अपनी वक्रिमता के कारण अजीब और आकर्षक होते हैं। दयाराम ने मुहावरों और लोकोक्तियों का बहुत प्रभविष्णु प्रयोग किया है। अपनी बात को समझाने के लिए, उसकी पुष्टि के लिए समाज में परम्परा प्राप्त तथ्य को दयाराम बड़ी कुशलता से नियोजित करते हैं। प्रेम प्रभु से उच्च है, श्रेष्ठ है। प्रेम को शिर पर चढ़ाना होता है कन्धे पर नहीं। कन्धे पर प्रभु चढ़ते हैं, शीश पर तो प्रेम को ही विराजमान करना पड़ता है। हनुमान राम के बड़े भक्त है; कण-कण में राम का दर्शन उन्हें होता है परन्तु जब 'स्नेह' की बात आती है तो उसे शिर पर चढ़ाते हैं और राम को कंधे पर—

प्रेम प्रभु हुतें प्रथु, विबुध विचारी लेहु।
कपि सकंध रघुनाथ लिए, सीस चढ़ाए सनेहु ॥

'स्नेह' की द्वयर्थकता का कवि ने बड़ा सार्थक प्रयोग किया है। लोगों की प्रचलित परम्परा से अपनी बात की पुष्टि करना दयाराम की अपनी विशेषता है।

दयाराम जगत के रीति-रिवाजों से पूरे परिचित थे। पूरे प्रैक्टिकल थे। लोक में जो है वही स्वीकारने योग्य है। दो चीजें एक साथ नहीं चल सकतीं हैं—गाल भी फुलाते जाओ और गाना भी गाते रहो। चित्त भी एक साथ दोनों स्थानों पर नहीं रह सकता है—

चित्त एक है अंन दें कोउ न सहियतु कहैंन।
गंड फुलेबों गायबो दुहु बस संग बने न ॥४६०॥

दयाराम मुहावरों के प्रयोग में बड़े सक्षम और समर्थ हैं। कुछ और उदाहरण लीजिए—

साहस कबू न कीजिए, होइ पुन, परिताप।
भयो बिचारे बिनहि ज्यों, गहे छछूंदर साप।।
साधन बल हों तर'गो, प्रभु का तुम एँसान।
करि हों तारन बरव का, डारि सिघानी लोन ।।४६२।।
कबहू कृष्ण इस्सा बिना, डोले नाँहि इक पात।
एहो इह चित राखियो, लछ्य बात की बात ।।१५६।।

दयाराम की सूक्तियाँ बड़ी मार्मिक होती हैं सीधे ही हृदय पर असर करती हैं। सुनने वाला सुनता ही रहे पर जवाब देते जवान चुप हो जाय। वे कृष्ण से सीधा ही प्रश्न करते हैं—जैसी तलवार होगी वैसी ही म्यान भी होगी न ? आप प्रभु त्रिभंगी हैं इसलिए मुझे अपने हृदय को कुटिल रखना पड़ा।

चाहु बसाये हृदय में, श्रद्द त्रिभंगी ध्यान।
तातें राख्यो कुटिर उर, होहि असी सो म्यान।।

यह लोक स्वीकृत तथ्य है कि जो वस्तु जितनी कष्टसाध्य है वह उतनी कीमती है। जिस पर जितना परिश्रम लगेगा वह उतनी मँहगी बनेगी जिस पर जितना प्रतिबन्ध होगा वह उतनी आकर्षक बनेगी—

निज इष्टा प्रनिबन्ध का, यें जनि रख्यो अशेस।
ज्यों ज्यो मेघी चीज जो, त्यों-त्यों मिष्ट विसेस ।।१६२।।

उनकी भाषा धारदार भी है। वेद-शास्त्र के विधान अलग हैं और लोकगति अलग है। वेद और शास्त्र जो कहते हैं लोक में उससे विपरीत देखा जाता है। देखिए पूतना ने भगवान को जहर दिया, भगवान ने उसे सद्गति प्रदान की। भगवान के तुष्ट और रुष्ट होने का कोई निश्चित तरीका नहीं दिखाई देता है। यदि भक्तों से तुष्ट हैं तो सन्त भूतल में क्यों भटकते हैं ? और यदि दुष्टों से रुष्ट हैं तो गिद्ध और गणिका क्यों वकुण्ठ में विराजमान हैं ?

है सो पावे वेद वच, पें क्यो कहिए सत्य।
थकि माधो माहुर दियो, क्स पाई सुभगत्य।।
काहू न मालूम कौन विधि, तुष्ट रुष्ट भगवन्त।
गिध गुनिका बैकुण्ठ में, भुवस भटकत सन्त।।

दयाराम के दोहों में एक कसाव है। सरलता के साथ एक गहराई भी है। सरल भाषा में सार्वजनीन सत्य की स्पष्ट अभिव्यक्ति में दयाराम शत प्रतिशत सफल हुए हैं—

भलों भले को सब मिले, बुरे-बुरे को होई।
दुष्ट युधिष्ठिर ना मिल्यो, साधु सुयोधन कोई॥
बिन बिवेक बसु व्यय किये, सोभा कोउ न पाय।
फूको बसुरी रस न क्यों, अंगुरि बिना लगाय॥

भाषा मे पर्याप्त विदग्धता भी मिलती है। दयाराम मे केवटवाली विनम्रता के साथ विदग्धता है। वे कहते हैं—कृष्ण! यदि आप खुश है तो स्वय आशीर्वाद दीजिए और यदि नाराज हैं तो स्वय मुझ पर लात मारिये। पर यह काम दूसरो से न करवाइएगा। कितनी नम्रता! और साथ ही यह धमकी भी कि दूसरो के आशीर्वाद की न तो उन्हें परवाह है न याचना करते हैं, लात तो सहगे ही नहीं। कृष्ण पर एहसान भी और साथ समर्पण भी। दयाराम आगे कृष्ण को कहते हैं—'आप तो बडे सुकुमार है, कोमल हैं। मेरे अपराध बहुत हैं कहाँ तक याद रखेंगे, आपको श्रम बहुत पडेगा इसलिए आपका फायदा इसी मे है कि आप उन्हे भूल जाइए—

तुठौं तो सिर कर धरो, रूठौं तो उर लात।
पै निज औरन पैं नहीं, यह जाचौं जगतात॥७॥
अनन्त हैं अपराध मम, कैसें पैहो अन्त।
श्रमित होउगे बीसरौं, सकुमार भगवन्त॥२०॥

दयाराम की भाषा भावानुवर्त्तिनी है। जैसा भाव वैसी भाषा। ईश्वर के अस्तित्व मे विश्वास न रखने वाले नास्तिको को लताडने मे वे करीब-करीब कबीरी भाषा का प्रयोग करते हैं।

दयाराम कहते हैं—'नास्तिक तो उल्लू हैं, अपनी शक्ति की मर्यादा को सूर्य की मर्यादा समझ बैठे हैं—

कहे मीमासक ईस ना, सुनि मन जिन धरि साँच।
घू घू घनें न जानहो, तहु क्यों सूर हैं साच॥

घने का प्रयोग बडा मार्मिक है। बहुत उल्लू मिलकर भी कह तो भी सूर्य की सत्यता पर आँच नही आ सकती है। उन्हें अपने विधान और मत पर इतना विश्वास है कि प्रतिपक्षी की निरुत्तरता पर दया खाते हुए वे कहते हैं—

भयो ब्रह्म तें जीव फिरि, ब्रह्म होय कहि मुग्ध।
क्यों बधि पयसों होत सो, बहुरि बनें नहि दुग्ध॥२३५॥
निराकार सबकों कहैं, पै प्रभु हैं साकार।
जो अवयव नहि ईस, कहाँ कहाँ संसार॥२३०॥

दयाराम ने जो कुछ कहा है वह मौलिक कहा है।[1] संसार के अनुभवों को उन्होंने जिस सरलता और ताजगी के साथ कहा है वास्तव में उनकी अपनी विशेषता है। उनके उपमान बिल्कुल ताजे धरती की सुगंध से भरे हैं। संसार के पलटते रंगों को सावन-भादों के आकाश के पलटते रंगों से मूर्तिमत कर देना उसकी कला का अपना रंग है—

आज सु कालि न अब सुघरि, यहैं चाल जगत्याल।
नभ में नभ ज्यों प्रथक पल, सित असित पीन लाल॥

जो आज है वह कल नहीं, जो अब है वह घड़ी भर के बाद नहीं रहता है। सावन-भादों के मेघों के समान समय का रंग बदलता रहता है।

सज्जन कभी दुर्जन पर विजय नहीं पा सकता है। छुरी ककड़ी से कभी पराजित नहीं हो सकती है—देखिए—

सज्जन दुरिजन कों भिड़ो, कबहू विज न पाय।
ज्यों हू छुरि ऊँचें नीचें, ककरी काटी जाय॥४६८॥

दयाराम शब्दों के शिल्पी थे। शब्दों को उन्होंने कहीं-कहीं पर जादूगर के समान नचाकर पाठक या श्रोता को चमत्कृत किया है। प्राय रीतिकालीन कवियों में यह प्रवृत्ति रही है। दयाराम भी इस कला में प्रवीण हैं। उनकी यह कला अनेक रूपों में मिलती है यमक, श्लेष और अनेकार्थी शब्दों के द्वारा प्राय यह चमत्कार उन्होंने दिखाया है—

सुनि कन्या अपमान की, तुला न तेरी कोय।
मीन केतु दुव देत प्रिय, मिथुन मिलहू सुख होय॥२७२॥

इस दोहे में सामान्य अर्थ के अतिरिक्त चार राशियों के नाम एक साथ आये हैं। ऐसे अनेक दोहे दयाराम में मिलते हैं।

कुमार जनक उमापति पन्नगधर निधनेश।
शंखबरन शिवनामधर, बरनत एहि अशेस॥२८६॥

इस दोहे में कृष्ण और शिव के पाँच-पाँच नाम हैं। शिव के नाम स्पष्ट हैं, परन्तु उनमें प्रथम वर्ण अलग कर देने से कृष्ण के पाँच नाम उपलब्ध हो जाते हैं।

चमत्कार और पाण्डित्य प्रदर्शन के लिए दयाराम ने भाषा के विविध प्रयोग किये हैं। शब्द-क्रीड़ा के अन्तर्गत उन पर विचार किया गया है।

वास्तव में दयाराम उन समर्थ कवियों में से हैं जो अपने कथ्य की दिशा में अपनी भाषा को मोड़ देते हैं। दयाराम ने भाषा से जैसा चाहा वैसा काम

लिया है। उनकी भाषा मे जहाँ एक ओर खण्डन-मण्डन की कठोरता और तीक्ष्णता है तो दूसरी ओर भक्ति की ऋजुता और विनम्रता भी विद्यमान है। शृङ्गार के क्षेत्र मे उनकी भाषा मे वैदग्ध्यपूर्ण वाणी की रसिकता और नागरिकता है तो राजदरबारो मे पण्डित वर्ग को चमत्कृत कर देने वाली शब्द-क्रीडा की जादूगरी भी है।

शैली—

भाषा की तरह शैली का भी अपना महत्व है। वास्तव मे शैली लेखक के व्यक्तित्व से जुडी हुई होती है। प्रत्येक कवि या लेखक का अपना व्यक्तित्व होता है उसके व्यक्तित्व के अनुरूप उसकी अपनी शैली होती है।

दयाराम ने समय-समय पर भिन्न भिन्न शैलियो म अपनी अभिव्यक्ति को प्रस्तुत किया है। दयाराम ने प्रमुखत समास शैली, व्यास शैली, ध्वनि प्रधान शैली, ऊहात्मक शैली और वक्रोक्ति प्रधान शैली तथा चमत्कारपूर्ण शैली का प्रयोग किया।

समास शैली—दोहा छोटे आकार का छन्द है। इसमे विस्तार का अवकाश नही रहता है। थोडी सी शब्द-सम्पत्ति मे अपना वैभव दिखाना होता इसलिए समास शैली दोहे के लिए उपयुक्त मानी जाती है। दयाराम ने समास शैली का अधिकतया उपयोग किया है। समास शैली मे अल्प समास और बहुला दोनो रूप मिलते हैं।

अल्प समासा—

श्री राधावर जाहिं बस, ता पद पुष्कर सेह।[1]
कंचन कर मांगू सदा, ता पे नूतन नेह॥
\+ \+ \+
मर्जुनाभरन जराम्बर कनकलता सौं अग।
अभिजित वय आभिर सुता, मिलन चली श्रीरग॥[2]

इनमे राधावर, पद-पुष्कर दो ही समास हैं। समास छोटे हैं। दो-दो पदों का ही जल है।

दयाराम ने दीर्घ समासो का भी प्रयोग किया परन्तु बहुत कम दोहो मे—

---

१ दयाराम सतसई, दोहा स० ५।
२ वही, १९३।

योगयज्ञजप-तपतिरिथ ग्यानधरमव्रतनेम।
विहिन वल्लव वल्लभा, करि हरि इक बस प्रेम ॥[1]

इस दोहे म दीर्घ समास रचना हुई है। परन्तु अर्थ की दुरुहता इसमे नही ह।

ध्वनि प्रधान शैली—जहाँ पर कवि व्यग्य पर विशेष ध्यान रखता है वहाँ अभिव्यक्ति म व्यग्यात्मकता आ जाती ह। अर्थ म लक्षणा और व्यजना के द्वारा भावों को सूक्ष्मता आती ह और अनेक स्तरो का प्रस्फुटन होता है। दयाराम ने भावो को व्यजित करने म इस शली का चारु प्रयोग किया है।

लाल लखी छवि आज की, आनन्द उर न समाय।
पे रति कम तासु अब, जानि जियों नहि जाय ॥[2]

—'हे लाल! आज की शोभा दखकर मेरे हृदय मे आनन्द नहीं समाता है। पर कमनसीब हूँ अब अधिक नही जी सकूगी।' प्रिय की मधुर मूर्ति को देखकर उसे जीने की इच्छा होनी चाहिए थी, पर वह मरना चाहती है—यह वस्तु ही उसके प्रियतम का अन्य सभोग की सूचना या व्यजना करती है। यहाँ वस्तु से वस्तु व्यजना है।

स्यामा आनन ससि लखन चकोर तरसत नाह।
मान परब केतो अज्यों, टरत न घूघट राह ॥[3]

यहाँ स्यामा का आनन चन्द्र है, नायक चकोर है मान रूपी ग्रहण पर्व लगा ह और घूँघट रूपी राहु चन्द्र को मुक्त नही कर रहा है। रूपक के द्वारा मान छोडो, घूँघट हटाओ की व्यजना के द्वारा नायक का नायिका के प्रति 'रति भावना' को ध्वनित किया गया है।

ऐस अनेक स्थल हैं जहाँ पर भावो की सुन्दर अभिव्यजना हुई है। देखिए—

स्यामा तू जिन जाहि घर, बिन घूँघट पट खोल।
परि हैं तेरों बदन लखि, भोर कोक मुख सोल ॥
× × ×

१ दयाराम सतसई, ६७।
२ वही, १८४।
३ वही, २५०।

कागद सा गद राधिका, काम बए जो सौंन।
सरकत - सरकें कचुकी, परसन को पिय पान ॥

× × ×

कटाक्ष नोक चुभी किधौं, गडे उरोज कठोर।
कें कठि छोटो में हितु, रचौ म नन्दकिशोर ॥[1]

ऊहात्मक शैली—रीतिकाल के सभी कवियो ने ऊहात्मक शैली को अपनाया है। दयाराम पर इनका प्रभाव था। इस शैली म कल्पना की इतनी ऊची उडान होती है कि आस्वादक इस आकाश गामिता के साथ सामञ्जस्य स्थापित नही रह सकता है। दूर की कौडी लाने का प्रयत्न किया जाता है। भावो की इससे पूरी उपेक्षा हो जाती है। स्वाभाविकता प्राय लुप्त हो जाती है। चमत्कार सर्जना हावी हो जाती है। बिहारी में ऐसे अनेक वर्णन मिलते हैं। दयाराम ने भी इस प्रचलित शैली का आश्रय लिया है—

अलि ! तेरें पानी घुयो, पानी परसहो लागि।
सहू सद्कारी म बहो, अगन तेरो आगि ॥[2]

—यहा एक विरहिणी नायिका को शरद ऋतु मे उसकी सखी ठडी से बचने के लिए अंगीठी लाकर रख देती है। नायिका स्वत ही विरह की अग्नि सतप्त है। इसलिए वह हाथ से पानी छिडककर उसे बुझा देती है। इस पर कल्पना की उडान भरकर कविनिबद्धजन प्रौढोक्ति के द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि नायिका ने हाथ मे पानी लिया तो वह पानी इतना दाहक बन गया कि उसने अगीठी की आग को जलाकर राख बना दिया। विरह के आधिक्य को प्रकट करने के लिए यह दूरारूढ कल्पना की गई है। इसी तरह—

दाम धरो धनसार सखि, बरबट बिरहनि बाल।
होरि बिवारी एक थय, प्रकटी दीपक माल ॥[3]

—विरहिणी नायिका के हृदय म विरह की अग्नि जल रही है। उसे शात करने के लिए शीतोपचार के रूप में सखी कपूर की माला हठ पूर्वक पहनाती है ताकि थोडी शीतलता मिले। परन्तु हुआ उलटा। कपूर की माला पहनते ही दिल की आग ने कपूर क मनको को प्रज्वलित कर दिया और माला

१ दयाराम सतसई, २४६, २०२, १६२।
२ वही, २१५।
३ वही, २१४।

दीपमाला की तरह जल उठी। अन्दर हृदय विरह की होली में जल रहा है और बाहर दीपमाला की रोशनी हो रही है। यों नायिका में होली दीपावली एक साथ मनाई जा रही है। विरह अग्नि की अतिशयता व्यंजित करने के लिए कल्पना की अस्वाभाविक उड़ान भरी गई।

वक्रोक्ति प्रधान शैली—प्रधान आलंकारिक भामह वक्रोक्ति को ही काव्य का सर्वस्व मानते थे। वह सब अलंकारों की जननी है—

सैषा सर्वत्र वक्रोक्ति रनयाऽर्थो विभाव्यते।
यत्नोऽस्यां कविना कार्यः कोऽलंकारोऽनया विना॥

कथन में यदि वक्रता न हो तो वह वार्तामात्र बनकर रह जाता है। वक्रोक्ति कथन की एक भंगिमा है जो विच्छित्ति विधायक होती है। दयाराम में वक्रता अनेक रूपों में मिलती है। मोहन ने एक गोपी से दही मांगा। गोपी ने सारा दोना ही उनके सामने पटक दिया। दही बिखर गया, पर कृष्ण खुश! कुछ मांगा कुछ दिया फिर भी नन्दकुमार तृप्त! खुशी का कारण न रहते हुए भी खुशी बताई गई है। परन्तु दोना के श्लेष को ना पदभंग करते हुए गोपी ने ना ना (दो बार ना) कहा है। स्त्रियों की दो बार ना ना 'हां' में पलट जाती है। गोपी से दही मांगा गया, गोपी ने दोना के द्वारा सम्मति दे दी। अतः नन्दकुमार खुश हो गये। देखिए—

दधि दैंनो मोहन कह्यौं, दोंना दीनो डार।
मांग्यो कछु दीनो कछू, रीझे नन्दकुमार॥[1]

इसी प्रकार—

आगी तें बेली बढ़ें, जल सींचे कुम्हलाय।
सिरके पलटें फल मिलें, मुख बिन खायों जाय॥[2]

—एक बेली आग से फलती फूलती है, पानी से मुरझा जाती है। सिर के बदले फल मिलता है और बिना मुख के खाया जाता है। *यहाँ विरोधाभास* अलंकार है पर यह वक्रोक्ति पर आधारित है। प्रेम की लता विरह अग्नि से वृद्धि को प्राप्त करती है। सिर की कीमत पर उसका फल मिलता है उसका आस्वाद हृदय करता है।

---

१ दयाराम सतसई, २०६।
२ वही, ८१।

वानिक नटवरलाल किन सिखन सोघ विन रन ।
पान करें प्यासें मरें बनचर त्यों मम नैंन ॥[1]

—कृष्ण की शोभा का पान करने पर भी ये नेत्र प्यासे ही रहते हैं। यहाँ विशेषोक्ति के कारण कथन में वक्रता आई है।

उपर्युक्त उदाहरणो मे वक्रता का कारण अलकार थे। अलकार विहीन कथन भी वक्र होता है। दयाराम कहते हैं—प्रभु! यदि मैं अपने बल तरूँगा तो उसमें आपका एहसान ही क्या! तब यह प्रकट हो जायेगा कि यह तो स्वय ही तर गया तो फिर आप अपने तारन-बिरुद का क्या करेंगे? क्या नमक डालकर अचार बनायेंगे? कथ्य यह है कि भगवान मुझे येन केन प्रकारेण तारना ही होगा। इसी भङ्ग्यन्तरेण कहा गया है—

साधन बल हौं तर्यौं, प्रभु का तुम एँहसान।
करिहौं तारन बरद का, डारि सिधानो लोन ॥[2]

उपर्युक्त विवेचन के यह स्पष्ट हो जाता है कि दयाराम एक समर्थ कवि हैं। काव्यशिल्प के सभी उपकरणो का उन्होंने बड़ी क्षमता के साथ उपयोग कर अपनी अभिव्यक्ति को प्रभावशाली और समृद्ध बनाया है।



१ दयाराम सतसई, ६८।
२ वही, ४६२।

१२ अलंकार योजना

युवतेरिवरूप मगकाव्य स्वदते शुद्धगुण सदप्यनीव ।
विहित प्रणय निरंतराभि सदलकार विकल्प कल्पनाभि ।।[१]

काव्य में अलकारो का अपना एक विशेष स्थान है। शब्द-सौन्दर्य और मनोहरता का आधार अलकार ही है। अग्निपुराणकार के शब्दो म कह तो—

अलकरणमर्थानामर्थालकार मिष्यते ।
त विना शब्दसौन्दर्यमपि। नास्ति मनोहरम ।।[२]

दण्डी ने काव्य के मव शोभा कारक धर्मों का अलकार कहा है।[३] इसमे अलकारों के अतिरिक्त गुण रस ध्वनि आदि काव्य तत्व भी अलकारा मे आ जात हैं। परन्तु परवर्ती आचार्यो ने रस, ध्वनि और गुण आदि तत्वा से अलकारा को पृथक् कर उन्ह केवल शब्दार्थ के अस्थिर धर्म के रूप म स्वीकारा है। अलकारो के विषय मे अनेक मतवाद हैं परन्तु काव्य मे अलकारो की उपयोगिता से इन्कार नही किया जा सकता है। ध्वनिवादियो ने भी अलकारा के उपकारकत्व के प्रति अपना आग्रह व्यक्त किया ही है। कविजन अपनी अभिव्यक्ति को प्रेषणीय बनाने के लिए अलकारों का सहारा लेते रहे हैं। कितना ही बडा कवि क्यो न रहा हो अलकार विरहित उसकी कविता नही रही है। अलकार कवि के लिए एक उपयोगी उपादान है जिसके माध्यम से वह अपने शब्दो म सगीत भर सकता है, अपनी कल्पना को चित्रो मे ढाल सकता है और अपने भावो का उत्कर्ष प्रस्तुत कर सकता है। आचार्य शुक्लजी ने अलकारो के विषय मे अपना विचार व्यक्त करते हुए कहा है—"भावों का उत्कर्ष दिखाने और वस्तुओ के रूप, गुण और क्रिया का अधिक तीव्र अनुभव कराने मे कभी-कभी सहायक होने वाली युक्ति अलकार है।"[४]

---

१ काव्यालकार सूत्र ३/१/२१।
२ अग्निपुराण।
३ काव्यशोभाकारान् धर्मान् अलकारान् प्रचक्षते। काव्यादर्श २/१।
४ चिन्तामणि (प्रथम भाग) पृ० १८३-८४।

वस्तुत अलकार आज तक काव्य मे एक अनिवार्य तत्व के रूप मे अपना स्थान बनाता चला आया है। समय के बादलो ने चाहे उसे अनेक रग दिए हो चाहे उसे ढँक दिया हो तो भी उसका अपना एक पक्का रग रहा है जो कवियो की वाणी मे हमेशा झलकता रहा है। अलकारो से भाषा मे गति आती है। अधल्प को सुकल्प बनाया जाता है। भावो को प्रभावशाली और सजीव किया जा सकता है। अलकार चमत्कार भी उत्पन्न करते हैं, कवि के सामर्थ्य को भी प्रकट करते हैं।

अलकारो के तीन भेद किये गये हैं—१ शब्दालकार २ अर्थालकार और ३ उभयालकार। शब्दो पर आश्रित अलकार शब्दालकार और अर्थ पर आश्रित अलकार अर्थालकार तथा दोनो पर आश्रित उभयालकार कहे गये हैं। यद्यपि यह अन्वय-व्यतिरेकी सम्बन्ध एकान्तत पूर्ण नही है। इन तीनो म अन्योन्याश्रयिभाव विद्यमान है। शब्दालकारो मे अर्थ का महत्व होता है और अर्थालकारो मे शब्दो का योगदान रहता है।

दयाराम रसहीन कवि नही थे। भावो की विविधता से उनका काव्य परिप्लावित है। वे एक नागरिक और रसिक कवि थे। एक प्रभावशाली वक्ता और कथाकार थे। शब्दो की गति और चाल को पकडने वाले उत्कर्ण सगीतज्ञ थे। समय की हवा मे रीतिकाल था। कमनीय कथन के पक्षपाती थे। चमत्कार की विमुग्धता के जानकार थे। कठिन काव्य और अमल सरस उक्ति के आग्रही थे। उनके मत म दुर्ग, काव्य, कुष्माड, कुच और ऊख कठोर ही सुहाते हैं और वही कविता श्रेष्ठ होती है जिसमे थोडे वर्णों म गम्भीर अर्थ निहित हो, जो सरस हो, निर्मल हो और जिसमे ताजगी हो—

दुर्ग, काव्य, कुसमांडु, कुच ऊख कठोर त्यों सार।
× × ×
बरन थोर अति अर्थ सह अमल सरस सब होय।[1]

दयाराम की कविता मे ये सभी विशेषताए मिलती हैं। अपनी अभिव्यक्ति को सरस, सजीव, प्रभावशाली, चमत्कारपूर्ण और ताजा बनाने के लिए दयाराम ने अलकारो का सुरुचिपूर्ण प्रयोग किया है।

प्रथम हम शब्दालकारों पर विचार करेंगे।

१ अनुप्रास—'वर्णों के साम्य को अनुप्रास कहते हैं।[2] इसके अनेक भेद होते हैं। छेकानुप्रास, वृत्यानुप्रास, लाटानुप्रास मुख्य हैं। अनुप्रास मुख्यत

---

१ दयाराम सतसई, दो० ७०२/७०२।

२ अलकार मजरी कन्हैयालाल पोद्दार, पृ० ५।

अपनी सगीतात्मकता से भावों के उत्कर्ष में सहायक होता है। प्रवत्स्यतपत्रिका की बेचैन अवस्था का चित्रण इन शब्दों में हुआ है—

कलकि न पल पलका न पल, पलक लगी अलि मेरि।
प्रान प्रान कल जान मो, प्रान जात नहि देरि ॥[1]

इस दोहे में 'क' म 'क' और 'ल' की, 'पन' में प और ल की एक बार आवृत्ति होने से छेकानुप्रास है।

वृत्तिगत अनेक वर्णों की अथवा एक वर्ण की अधिक बार आवृत्ति किये जाने को वृत्यानुप्रास कहते हैं। दयाराम ने 'लाल' और 'लली' की मिलन-लालसा सगीत के साथ प्रकट किया है—

लाम लली ललि लाल की, लें लागो लखि लोल।
ल्याय बेरि लय लाय कर, बुहु कहि सुनि चित डोल ॥[2]

—नायक और नायिका एक दूसरे से मिलने को उत्सुक हैं। दोनों की मध्यस्थ दूतिका दोनों की मिलन-लालसा को सुनकर स्वयं डोल उठी है। चित्त का डोलन-अवस्था की सुन्दर अभिव्यक्ति 'ल' की अनेक बार आवृत्ति होने से हमारे सामने आती है।

लाटानुप्रास में शब्द और अर्थ दोनों की आवृत्ति होने में तात्पर्य की भिन्नता रहती है। इससे एक चमत्कार पैदा होता है। दयाराम में इसके बहुत उदाहरण मिलते हैं। देखिए—

हरिचरन आकारचित हरिचरन आगार।
वांको फल ससार हैं वांको फल ससार ॥

× × ×

हरि भगती ही छाँहि लौं, मुकति मुकनि मत पाय।
हरि भगती ही छाँहि तौं, मुकति मुकनि मत पाय ॥[3]

२ यमक—यह कवियों का प्रिय अलकार रहा है। कालिदास, भारवि और माघ के काव्यों में इसकी छटा दर्शनीय है। वृन्द ने तो यमक शतक ही लिख डाला है। दयाराम ने इसका बहुत सुन्दर प्रयोग किया है। इस बहु-आयामी शब्दालकार के सभी आयाम 'सतसई' में मिलते हैं। सम सगीत की सृष्टि के साथ-साथ विदग्धतापूर्ण चमत्कार इसकी खास विशेषताएँ हैं।

---

१ दयाराम सतसई, दो० २०१।
२ वही, दो० ७३।
३ वही, दो० ५७०/५६४।

यमक अलंकार वहाँ होता है जहाँ समान स्वर और व्यंजनों से युक्त किन्तु अर्थों में भिन्न पदों की आवृत्ति होती है। यह आवृत्ति कहीं सार्थक, कहीं निरर्थक और कहीं सार्थक-निरर्थक दोनों होती है। इसके अनेक भेद होते हैं।

मोहि मोह तुम मोह कों, मोहे न मो कहुँ धारि।
मोहन मोह न वारिए, मोहनि मोह निवारि ॥[1]

इसमें प्रथम मोहन का अर्थ सार्थक है दूसरा मोहन पद निरर्थक है। मोहनि मोहनि में आकार एक है अर्थ भिन्न हैं।—

मनन करो कसारि छब, मनन करो ससार।
हरि न बारिसो छार वे, हरि बारिधि सब सार ॥
सुमरन काल सु टरि गयो, सु मरन काल टरैं न।
काल काल सुमरैं न हरि, काल काल सु मरैं न ॥[2]

३ पुनरुक्ति—भाव को रुचिर बनाने के लिए जहाँ एक ही बात को बार-बार कहा जाय वहाँ पुनरुक्ति अलंकार होता है। भावों की तीव्रता को प्रकट करने के लिए एक शब्द को दुहराया जाता है—

मुकुर मुकुर सब वस्तु भई नयन अयन प्रिय लाल।
द्रग पसारि जित जित अली तित तित लखु गुपाल ॥[3]

—एक बार गोपी के नेत्रों में कृष्ण समा गये तो फिर उसे यत्र तत्र सर्वत्र कृष्ण ही दिखाई देने लगते हैं। सर्वत्र कृष्ण ही कृष्ण हैं, उसे कृष्ण के अतिरिक्त कुछ नहीं दृष्टिगोचर होता है। इस भावलयता को प्रकट करने में मुकुर-मुकुर, जित-जित, तित तित शब्दों की द्विरावृत्ति हुई है। साथ-साथ अनुप्रास से अनुप्राणित होने के कारण हृदय के उल्लास की संस्कृति भी इसमें मुखरित है।

४ पुनरुक्तवदाभास—जहाँ विभिन्न अर्थ वाले और आकार वाले पद सुनने में समानार्थी प्रतीत हों वहाँ यह अलंकार होता है—

---

१ दयाराम सतसई, ११२।
२ वही, ३५१, ७१, ४१६।
३ वही, दो० १००।

उया बिन असु न रहे सु बड़, और ऊँच [illegible] होन।
पय पानी तें मधुर पें, कहाँ परि जिए न मीन ॥[१]

—जहाँ पय और पानी दोनो पर्यायवाची होने पर भी प्रस्तुत दोहे मे भिन्नार्थता रखते हैं। दोनों भिन्न अर्थ वाले हैं, भिन्न आकार के हैं परन्तु सुनने मे पय-पानी पर्यायवाची प्रतीत होते हैं।

५ वीप्सा—जब भय, आदर आदि कारणो से एक ही शब्द को एकाधिक बार कहा जाय तब वीप्सा अलकार होता है।

समर समर मन सरस छब, नटवर नगधर कृष्ण।
जस पदपय हर सिर धरत, अघहर भर सब तृष्ण ॥[२]

कृष्ण के प्रति आदर भाव के साथ स्मरण करने का विधान 'समर' 'समर' पद की आवृत्ति के द्वारा किया गया है। एक कृष्ण ही केवल स्मरण करने लायक हैं—इस भावना से आदर व्यक्त किया गया है।

६ वक्रोक्ति—जहाँ कोई किसी बात को जिस मतलब से कहे और सुनने वाला उसका कोई और ही अर्थ लगावे तो वहाँ वक्रोक्ति अलकार होता है। इसके दो भेद हैं—श्लेष वक्रोक्ति और काकु वक्रोक्ति। दयाराम मे श्लेष वक्रोक्ति नही मिलती है। काकु वक्रोक्ति के अनेक उदाहरण हैं। यथा—

भक्त न हों साच परि, अधम पतित हूँ मे न।
मो सुधि अजहू ना लई, कैसे पकज नैन ॥[३]

७ श्लेष—श्लेष मे दो या दो से अधिक अर्थ एक ही पद म निहित होते हैं। इन दो अर्थों का कहीं तो पद को खण्डित करके निकालना पड़ता है और कहीं पर अभग रूप मे ही अर्थ निकलता है। इस तरह श्लेष के दो भेद होते हैं—१ अभग श्लेष और सभग श्लेष।

दयाराम श्लेष की कला मे प्रवीण थे। अनेकार्थी बहुत से शब्दो का उन्होंने प्रयोग किया है। पदो को भग करने पर खण्डो से भी अर्थ निकाले हैं। इसम पाण्डित्य और चमत्कार दोनों ही निहित हैं।

---

१ दयाराम सतसई, ११४।
२ वही, ७०६।
३ वही, १२।

जगजीवन जन ताप हर, चपला प्रिय वपु स्याम।
वैष्णों वल्लभ नीलग्रीव, हरि माधो अस नाम ॥[1]

—मेघ और कृष्ण को एक साथ लिया गया है। यहाँ पर सभी पद दो अर्थ वाले हैं—मेघ जगजीवन है क्योंकि पानी देता है, कृष्ण भी जग के जीवन हैं। दोनो तापहर हैं। एक चपला लक्ष्मी का प्रिय है तो दूसरा चपला-बिजली का प्रिय है। दोनो श्याम शरीर वाले हैं। वैष्णोवल्लभ श्रीकृष्ण वैष्णवो के प्रिय हैं तो मेघ वनस्पतियो के प्रेय हैं। दोनो नीलग्रीव (शिव और मयूर) प्रिय है। मेघ और कृष्ण की समता को लक्ष्य करना कवि का अभीष्ट है।

यह अभग श्लेष है। इसके अन्य उदाहरण हैं—

(१) खग सुरवाहन हंस विभु, हरि प्रिय रिपु सारिंग।
ऐसे हैं द्विजराज शुभ, कथन बरन सुभग ॥
गिरि निवास माधो प्रियें, निकट प्रिया जितकाम।
नीलकठ विन कौन अस, काल काल छब धाम ॥
दधि सुतधर भूधर धरन, भूतनाथ पशुपाल।
स्मार्त कहे शकर भये, वैष्णो कहे नन्दलाल ॥[2]

सभग श्लेप पदो को खडित करके अर्थ निकाले जाते हैं—

जीवन मे हरितें भजौं, सो वसब की आस।
बिलग भयों मन भाय वत, यह करतब अविनास ॥[3]

—इस दोहे के अनेक अर्थ होते हैं। दयाराम के श्लेष-सामर्थ्य का यह उत्कृष्ट उदाहरण है। जीवन—यौवन मे, जो बन मे—जो पानी मे, जो बन म—जो जगल मे—इस प्रकार 'जो बन मे'—के अनेक अर्थ होते हैं।

—इन दोहे के पाँच अर्थ दिये गये हैं। अन्य अधिक अर्थों की सम्भावना भी है।[4]

दयाराम के शब्दालकारो मे पाण्डित्य है, चातुरी है और चमत्कृति भी है। प्राय सभी शब्दालकारो के उदाहरण उनकी रचना मे मिलते हैं। भावो की गहनता भी उन्होने अलकारो के द्वारा प्रकट की है—

---

१ दयाराम सतसई, दो० २७६।
२ वही, २८१-८२ ६०।
३ वही, २९३।
४ देखिए—द० स० स० डॉ० अम्बा० नागर, पृ० १५७ (प्रथम संस्करण)।

सब ठा मुनिकै सगतें, पावें सब सनमान।
अगुनवती उर पै धरी, क्यों न होइ अपमान॥

—अगुनवती का अर्थ होता है बिना गुणवाली और दूसरा अर्थ होता है—बिना डोरी की माला। इस श्लिष्ट शब्द के सहारे स्वकीया नायिका ने अपने हीन आचरण वाले पति की अपमान योग्यता को बडे लाक्षणिक ढग से व्यक्त किया है। रोष भी व्यक्त हुआ और साथ ही परपुरुष के साथ रमण करने वाली को अगुनवती भी कहा गया है।

अब दयाराम प्रयुक्त अर्थालकारो का परिचय प्राप्त करें—

१ उपमा—उपमा एक प्रमुख अलकार है। वास्तव मे यह अलकार-रगमच की शलूषी है।[1] कविवश की माता है। सभी अलकारो के मूल मे है।

दो पदार्थों के साधर्म्य को उपमान उपमेय भाव मे कथन करने को उपमा कहते हैं।[2] रूप, गुण, धम के आधार पर सादृश्य स्थापित किया जाता है।

मो उर मे निज प्रेम अस, परिदृढ अचलित केतु।
जसे लोटन दीप सो, सरक न दुरक सनेहु॥[3]

—यहाँ कवि ने अपने हृदय को लोटन-दीप के समान बनाने को कहा है। डा० नागरजी यहाँ उपमा मानते हैं।

सुख पावें को दु ख सहैं, लगी उगें नहीं प्रीति।
लपटि वृक्ष जिमि वल्लरी, छुटी न कबु यह रीति॥[4]

—यहाँ वल्लरी उपमान है, प्रीति उपमेय है, जिमि समानता वाचक शब्द है। लगकर न छूटना यह समान धर्म है।

कारी सारी कुहु छपा, छुपन जात द्रुम ओट।
दुरि न रहे द्युति देह तहु, ज्यों ससि बदरा गोट॥[5]

—यहाँ नायिका की देह द्युति के साथ उपमान के रूप मे चन्द्रमा लिया गया है। बादलो मे ओझल होने पर भी चाँद अपनी द्युति के छिपा नही रह

---

१ देखिए—उपमैका शैलूषी सम्प्राप्ता चित्रभूमिका भेदान।
रंजयति काव्यरगे नृत्यती तद्विदां चेत॥ चित्र मी० पृ० ६
२ अलकार मजरी कन्हैयालाल पोद्दार, पृ० २८८
३ दयाराम सतसई दो० ५२। ४ वही, दो० ११७।
५ वही, दो० १६०।

सकता वैसे ही नायिका भी अपनी देह द्युति के कारण अमावस्या की अँधेरी रात में छुपी नहीं रह सकती है। बड़ी चित्रात्मक उपमा है।

चमको चहुँदिस चँदनी, गोरी धरि सित बास।
मुक्ति सक्ति लौं मलि चली, कुंज सदन पिउपास ॥[१]

२ रूपक—रूपक एक महत्वपूर्ण अलङ्कार है। इसमें उपमेय पर उपमान का आरोप किया जाता है। नपे तुले शब्दों में चित्र खड़ा कर देना रूपक की विशेषता है। दयाराम ने सुन्दर रूपक बाँधे हैं।

रूपक के मुख्य दो भेद होते हैं—अभेद रूपक और ताद्रूप्य रूपक। जहाँ उपमेय में उपमान का अभेद आरोप हो वहाँ अभेद रूपक होता है। जहाँ उपमेय को उपमान से पृथक उसी का स्वरूप कहा जाय, वहाँ ताद्रूप्य रूपक होता है। इनके अनेक भेद होते हैं। दयाराम ने इन सभी भेदोपभेदों का प्रयोग किया है। यथा—

पर्यो मनोरथ पौन है, आवर्तमधि मन तूल।
माधो मनिधर तुम बिना, ना टरि हैं इन सूल ॥[२]

—इस साग रूपक में कवि ने मन पर तूल का आरोप किया है और मनोरथ पर वात्याचक्र का, माधव पर मणिधर का। मन रूपी रुई मनोरथ रूपी पवन के बगूले के बीच पड़कर झूल रही है। माधव रूपी मणिधर ही इस वात्याचक्र को काटकर मन को स्थिरता दे सकता है। इसमें आंधी में फँसी रुई का ऐंठगाओं में फँसे हुए मन पर आरोप किया गया है।

प्रेम की उत्पत्ति और विकास का एक सुन्दर रूपक देखिए—

चकमक-जु परस्पर नयन लगन प्रेम परि आगि।
सुलगि सोगठा रूप पुनि, गुन दारु दृढ जागि ॥[३]

—नेत्र चकमक हैं। वे आपस में टकराकर प्रेम की चिनगारियाँ पैदा करते हैं। रूप रुई उन चिनगारियों को आकर्षित कर प्रज्वलित करती है और गुण रूपी लकड़ियों का ग्रहण करते ही आग फैल जाती है। अग्नि के उत्पादक प्रसारक सभी अंगों का प्रेम के उत्पादक और प्रसारक अंगों पर अभेदारोप है। अंगों के सहित होने के कारण साग है। वास्तव में दयाराम के रूपक समृद्ध और समर्थ हैं।

---

१ दयाराम सतसई दो० १६१।
२ वही, दो० २४।
३ वही, दो० ६८।

३ उत्प्रेक्षा—जहाँ उपमेय में उपमान की सम्भावना की जाती है वहाँ उत्प्रेक्षा अलङ्कार होता है। कवि की प्रतिभा-शक्ति की इसमें कसौटी होती है। इसके चार मुख्य भेद होते हैं—वस्तूत्प्रेक्षा, हेतूत्प्रेक्षा, फलोत्प्रेक्षा और गम्योत्प्रेक्षा। दयाराम में इस अलङ्कार का प्रयोग रूपक से कम हुआ है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

कुसहि लाल पित उपरना, निल तनु नन्द कुमार।
प्रेम लपटि अनुराग सिर, मानु मूरति शृङ्गार ॥[1]

—शृ गार के चित्र के साथ नन्दकुमार की सम्भावना की गई है। रंगों के मिश्रण से एक अनोखा चित्र प्रस्तुत हुआ है। इसमें श्रीकृष्ण को देखते ही उनके प्रति अजीब आकर्षण पैदा होने का भाव सूचित किया गया है।

४ अपह्नुति—इसमें उपमेय का निषेध कर उपमान का आरोप किया जाता है।

पीर न त्यारी मैन ए, नारी नारी मे न।
अली ! आयानों मिवक ए, इशक बिराद समुझें न ॥[2]

—सामान्य पीड़ा का निषेध कर काम-पीड़ा का विधान किया है।

५ विरोधाभास—जहाँ विरोध का आभास हो परन्तु वास्तव मे विरोध न हो, वहाँ विरोधाभास अलङ्कार होता है। यथा—

आगीतें बेली बढ़ै जल सींचत कुमलाय।
सिरके बलटे फल मिलें, मुख बिन खायो जाय ॥[3]

—अग्नि से लता का बढ़ना, जल से कुम्हला जाना, सिर के बदले फल मिलना—आदि विधान आपाततः विरोधी लगते हैं परन्तु विरहाग्नि से प्रेम की बेल बढ़ती है और मिलन के जल से कुम्हला जाती है—मिलन से प्रेम की तीव्रता घटती है। प्रेम मिर, हाथ पर रखकर चलने का सौदा है। इस तरह विरोध का परिहार हो जाता है।

६ प्रतीप—इस अलङ्कार में उपमान को उपमेय बनाया जाता है। इसके अनेक भेद होते हैं।

अमी निधि रस रति तरलता, कपा अपा रुचि मान।
इत्यादि गुन सबन की, लोचन उपमा कौन ॥[4]

—यहां प्रसिद्ध उपमानों का निरादर करके सर्वोत्तम गुणों से युक्त लोचनों का कोई उपमान नहीं है।

---

१ दयाराम सतसई, दो० ७२। २ दयाराम सतसई।
३ वही, ८१। ४ वही, २५४।

७ भ्रान्तिमान—जहाँ सादृश्यता या समानता के कारण उपमेय मे उपमान की भ्रान्ति होती है। यथा—

स्यामा तू जिन जाइ सर, बिन घूघट पट खोस।
परिहें तेरो बदन लखि, भोर कोक मुख सोस ॥[1]

८ व्यतिरेक—जहाँ उपमान की अपेक्षा उपमेय के उत्कर्ष का वर्णन किया जाता है वहाँ व्यतिरेक अलकार होता है। यथा—

नौनित तेंहू म्हा मृदु, सदा सत को उर।
वे पिघरत पावक परस, ये सुनि पर दुख दूर ॥[2]

—यहाँ उपमान नवनीत से उपमेय सन्त-हृदय को श्रेष्ठ बताया गया है।

९ अनन्वय—जहाँ एक ही वस्तु को उपमेय और उपमान भाव से कहा जाय वहाँ अनन्वय अलकार होता है—

कछु न प्रीय प्रान सों, सो तुमसों नहि प्रान।
तुम प्यारे इक तुमहि से, नाँ पटतर सम आन ॥[3]

—तुम तुम्हीं से प्यारे हो। दूसरा तुम्हारे समान प्यारा नही है।

१० तद्गुण—जहाँ कोई वस्तु अपना गुण त्यागकर किसी दूसरी वस्तु के उत्कृष्ट गुण को ग्रहण कर ले वहाँ तद्गुण अलकार होता है। यथा—

प्यारी तेरों अधर रस, क्यो बिसरें नन्दलाल।
बेसर निरमल मुकहू जिहि परसत भों लाल।[4]

—प्रस्तुत दोहे मे बेसर का निर्मल मोती भी अधर के रग से लाल हो गया है। अधर के उत्कृष्ट गुण का ग्रहण मोती ने किया है।

११ काव्यलिंग—जहाँ किसी बात को सिद्ध करने के लिए उसका कारण वाक्य के अर्थ मे या पद के अर्थ मे कहा जाता है—

भयो करस आनन्द रस, नये बिन और लहें न।
भये त्रिभगी ताहितें, कृष्ण कृपा के ऐन ॥[5]

---

१ दयाराम सतसई दो० २४९।
२ वही, दो० ३२८।
३ वही, दो० १४३।
४ वही, दो० २५५।
५ वही, दो० २०४।

—यहाँ कलश में भरित आनन्द रस की प्राप्ति झुके बिना नहीं होती है। इसलिए श्रीकृष्ण को त्रिभंगी होना पड़ा है। इसी तरह—

कैसे प्यारे लगत हो, कहत न आवत पीय।
कहें दिखावत बानि जो, द्वै दै होतो हीय ॥[1]

—यहाँ दिल की बात नहीं कही जा सकती है क्योंकि दिल को तो जुबान ही नहीं है। काव्यलिंग के अन्य सुन्दर उदाहरण भी दयाराम में मिलते हैं।

१२ दृष्टान्त—जहाँ पहले एक बात कहकर उसको स्पष्ट करने के लिए उससे मिलती-जुलती बात कही जाती है वहाँ दृष्टान्त अलंकार होता है। दूसरे शब्दों में यह तो जहाँ उपमेय, उपमान और साधारण धर्म का बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव हो वहाँ दृष्टान्त अलंकार होता है। यथा—

छपें दोष गुन प्रकट करें, पर हरिजन यह चाल।
लखि शिव दुहु बधि ते लहे, गरल गिल्यो शशि भाल ॥[2]

—प्रस्तुत दोहे में 'हरिजन दूसरे के दोषों को ढापते हैं और गुणों को प्रकट करते हैं'—इस बात को स्पष्ट करने के लिए उससे मिलती-जुलती शिव के गरल निगलन और भाल पर चन्द्र धारण करने की बात कही गई है। उपमेय, उपमान और साधारण धर्म में बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव है।

१३ अर्थान्तरन्यास—जहाँ किसी सामान्य बात का विशेष बात से अथवा किसी विशेष बात का किसी सामान्य बात से समर्थन किया जाता है वहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है—

चिंता तू चित क्यों करें, विश्वंभर व्रजपाल।
सक्कर सक्करखोर को, दधि मधि देत दयाल ॥[3]

—यहाँ चित्त! तू चिन्ता मत कर! श्रीकृष्ण जगत के पालक हैं—इसके समर्थन में दूसरी पंक्ति कही गई है। विशेष का सामान्य के द्वारा समर्थन किया गया है।

१४ प्रतिवस्तूपमा—जहाँ उपमान और उपमेय वाक्यों में एक ही धर्म—साधारण धर्म का कथन किया जाता है वहाँ प्रतिवस्तूपमा अलंकार होता है। यथा—

---

१ दयाराम सतसई, दो० १४५।
२ वही, दो० ४०७।
३ वही, दो० ३४८।

प्रेम प्रभू हूतें प्रभू, विबुध विचारी लेहु।
कपि सकंध रघुनाथ लिय, सीस चढ़ाय सनेहु ॥[1]

—यहाँ पर प्रथम वाक्य उपमान है और दूसरा वाक्य उपमेय है। इनमें एक ही साधारण धर्म—बड़ा विस्तृत व्यापक है। प्रेम ईश्वर से भी बड़ा है। हनुमान ने राम को कन्धे पर चढ़ाया और सनेह (प्रेम) को सिर पर चढ़ाया। साधारण धर्म एक है परन्तु भिन्न शब्दों को व्यक्त किया गया है।

१५ अप्रस्तुत प्रशंसा—प्रस्तुताश्रय अप्रस्तुत के वर्णन को अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार कहते हैं। इसके मुख्य पाँच प्रकार हैं।

कूकर हार चराव कहा, आवत लरै गयद।
मुस माज लै समुझि यों, लेगों यह मतिमंद ॥[2]

—यहाँ श्वान के अप्रस्तुत वर्णन के द्वारा उस गरीब आदमी का वर्णन है जो यह समझता है कि उसकी छोटी सी झोपड़ी के लिए राजा लड़ाई की तैयारी कर रहा है। इसी प्रकार—

सार असार न समझ जिहि, गुड़ रु खोल इक तोल।
कहा सबको सुनियो गुनि, उचित न कहियो बोल ॥[3]

इसे कुछ आलंकारिक 'अन्योक्ति' भी कहते हैं।

१६ विभावना—जहाँ कारण के बिना कार्य की उत्पत्ति हो वहाँ 'विभावना अलंकार' होता है। इसके अनेक भेद होते हैं। दयाराम में प्रायः सभी भेदों का सुन्दर प्रयोग हुआ है। यथा—

पानि पाय न ग्रहे गती, यह विधि सब कहि ब्रह्म।
प्राकृत नहिं अवयव अखिल, आनंदमय श्रुति भ्रम ॥[4]

१७ स्वभावोक्ति—जहाँ पर किसी वस्तु अथवा व्यक्ति का चित्रण किया जाता है वहाँ स्वभावोक्ति अलंकार माना जाता है। दयाराम ने एक स्वाभाविक मन स्थिति का सुन्दर चित्रण किया है—

---

१ दयाराम सतसई, दोहा ६३।
२ वही, दोहा ५२३।
३ वही, दोहा ५६१।
४ वही, दोहा ३३९, ३५२।

सजल नैन आधे बचन, झूम झूम सकुचाय।
सलोना समुझो लच्छसो, लिय हिय लाल लगाय ॥[1]

—यहाँ गोपी के पास खड़े किशोर कृष्ण की स्वाभाविक मन स्थिति का बहुत सुन्दर वर्णन है।

१८ *यथासंख्य—क्रमश कहे हुए पदार्थों का उसी क्रम से जहाँ अन्वय* होता है वहाँ यथासंख्य, यथाक्रम या क्रम अलंकार होता है—

फनि निवास दिवि सिंधु, बिधु सुधा नाहिं बिधु मूल।
गरल पान अरु क्षार क्षय, पति मृत कंठ पियूख ॥[2]

—प्रथम दल में कहे हुए पदार्थों का द्वितीय दल में कहे हुए पदार्थों में क्रमश अन्वय होता है।

१९ अनुमान—हेतु के द्वारा साध्य का चमत्कारपूर्वक ज्ञान कराये जाने को अनुमान अलंकार कहते हैं। यथा—

जितो बिरह संताप, तितो प्रेम परमानिये।
यह सनेह को माप, समुझ लेहु अनुमान ते ॥[3]

—*यहाँ संताप की अधिकता से प्रेम की अधिकता का अन्दाज लगाने को* कहा गया है।

२० कारण माला—जहाँ कारण और कार्य की परम्परा कही जाय, अर्थात् पहले का कहा हुआ बाद के कथन का कारण होता जाय वहाँ यह अलंकार होता है—

सुख कहाँ बिना मिलाप हरि, हरि कहाँ बिन बहु ताप।
ताप कहाँ बिना शुद्ध रति, रति कहाँ बिन सत छाप ॥[4]

—*यहाँ सुख कारण मिलन है, मिलन का कारण विरह-ताप है, विरह*-ताप का कारण शुद्ध प्रेम का कारण सत्संग है।

२१ सार—पूर्व-पूर्व कथित वस्तु की अपेक्षा उत्तरोत्तर कथित वस्तु का उत्कर्ष या अपकर्ष दिखलाना सार अलंकार है। यथा—

सब तें प्यारे प्रान, पत प्यारी हैं प्रान तें।
सहि ताहु की हान, याते प्रेम विभूष जे ॥[5]

---

१ दयाराम सतसई, दो० ६२३।
२ वही, दो० ३२२।
३ वही, दो० २४४।
४ वही, दो० ३७३।
५ वही, दो० ६२३।

—प्रस्तुत दोहे में सबसे प्यारा प्रान बताया और प्रान से प्यारी प्रतिष्ठा को बताया गया है। उत्तरोत्तर वस्तु का उत्कर्ष यहाँ वर्ण्य है।

२२ मालोपमा—जहाँ उपमेय के अनेक उपमान कहे जायँ वहाँ मालोपमा होती है —

लोभी कूं जस दाम प्रिय, कामी कूं जस काम।
त्यो अस घनश्याम प्रिय हैं, जपिये ताको नाम॥[1]

—यहाँ अनेक उपमानो का तथा उपमेय का 'प्रियता' समान धर्म कहा गया है।

२३ उपमेयोपमा—जहाँ उपमेय और उपमान परस्पर उपमेय और उपमान हों वहाँ उपमयोपमा होती है—

गुन भासूसन नम्रता, नम्रत भूखन गुण।
लौंन मिष्ट जिमि अन्न तें अन्न मिष्ट जिमि लून॥[2]

—यहाँ गुन और नम्रता मे लोन और अन्न मे उपमेय उपमान भाव है।

२४ निदर्शना—विभिन्नता रहते हुए भी जहाँ दो वाक्यों के अर्थ मे समताभाव सूचक ऐसा आरोप किया जाय कि दोनो एक ही जान पड़ें। इसके मुख्य तीन भेद होते हैं—

प्रीति जोरबी सरल पै, करिबौ कठिन निभाव।
जबों जलधी पार परि, बैठी कागद नाव॥[3]

—प्रस्तुत दोहे मे—'प्रेम का जोडना और उसका निभाना' के साथ 'कागज की नाव से समुद्र को तरना' का जो सम्बन्ध है वह असभव है क्योकि 'प्रीति जोडनी' और 'समुद्र तरना' दोना भिन्न कार्य हैं। अत यह असम्भव सम्बन्ध प्रीति का निभाना कागज की नाव से समुद्र-तरण के समान कठिन है'—इस प्रकार की उपमा की कल्पना कराता है। यहाँ प्रथम निदर्शना है।

२५ लोकोक्ति—प्रसग प्राप्त लोक-प्रसिद्ध किसी कहावत के उल्लेख किए जाने को लोकोक्ति अलकार कहते हैं—

साहस कबहुँ न कीजिए, होई पुन परिताप।
भयो विचारे बिनहिं ज्यों, गहे छछूंदर साँप॥[4]

---

१ दयाराम सतसई, दो० ६४४। २. वही, दो० ६२१।
३ वही, दो० १२४। ४ वही, दो० ४४६।

—गहे छछूंदर साँप प्रसिद्ध कहावत है।

२६ अतिशयोक्ति—जहा पर किसी वस्तु अथवा व्यक्ति के गुणो का वर्णन वास्तविकता से अधिक बढा-चढाकर किया जाय वहा अतिशयोक्ति अलकार होता है—

अलि तेरें पानी छुयो, पानी परस हो लागि।
मुहु सद्कारी मैं दही, अगन हु तेरी आगि ॥[1]

—यहाँ ठडे पानी के पडते ही आग बुझ गई—इस वास्तविकता को विरह ताप से सतप्त नायिका के हाथों का स्पर्श पाकर पानी इतना दाहक हो गया कि उसने आग मे पडते ही आग को भी जला डाला। विरहाग्नि की अतिशयिता को बताना ही लक्ष्य है।

२७ उन्मीलित—जहा दो पदार्थों के सादृश्य मे भेद न होने न भी किसी कारण भेद का पता लग जाने का वर्णन हो वहाँ उन्मीलित अलकार होता है—

हे स्मर हर धोखे न हरि विरही हति सर वेधि।
गोरे पें गोरी कहाँ हरि सुखेन ढिग पेखि ॥[2]

—यहा शिव और कृष्ण दोनो समान वर्ण के हैं इसलिए शिव के धोखे मे श्रीकृष्ण को बाण मत मारना क्योकि शिव के साथ गौरी रहती हैं, कृष्ण के साथ गौरी नहा है। शिव और कृष्ण के बीच भेद का पता 'श्रीकृष्ण के साथ गौरी का न होने' से लगता है।

२८ सूक्ष्म—किसी इगित (नेत्र भृकुटी-भगादि की चेष्टा) या आकार से जाने हुए सूक्ष्म अर्थ (रहस्य) को किसी युक्ति से सूचित किए जाने को सूक्ष्म अलकार कहते हैं—

आक-पार श्रीफल धर्यो, मुरली वर के पाँन।
ढिग ह्वो जोरो सखि प्रिया, कंध छुवायो कान ॥[3]

—इस दोहे म चेष्टा और आकार से 'सध्या के पश्चात् वशीवट मैं मिलन होगा की सूचना देकर 'ठीक' है, 'सम्मति' है की सूचना लेकर दूतिका अपने गन्तव्य की ओर जाती है।

दयाराम के दोहो म अलकार आरोपित नहो है अपितु दोहे की आत्मा के साथ जुडे हुए हैं। अलकारो का सहज और सरल निरूपण अन्यत्र प्राय नहीं मिलता है। शब्दालकारो मे दयाराम अवश्य कारीगरो कर गये हैं परन्तु अर्थालङ्कारो में उनकी रुचि सचेष्ट रहा है। दोहों मे एकाधिक अलङ्कार पाये जाते हैं।

---

१ दयाराम सतसई, दो० २६१।
२ वही, दो० २३६। ३ वही, दो० १८८।

१३ || छन्द योजना

दयाराम छन्दशास्त्र के ज्ञाता थे। हिन्दी मे उन्होने 'पिंगलसार'[१] ग्रन्थ की रचना कर काव्यशास्त्र के विषयो के साथ छन्दो के लक्षण उदाहरण भी दिये हैं। स्वय सतसई मे दयाराम कहते हैं—

पिंगल पद्धति देखिके रचना रची अदोष।
तदपि होय कछु समझियो, हरि गुन जिन धरि रोष ॥[२]

छन्दो की शुद्धता की दृष्टि से कवि ने शुद्ध शास्त्र सम्मत छन्दो की रचना की है। फिर भी कोई दोष आ गया हो तो उसके लिए नम्रता के साथ क्षमा याचना की गई है।

सतसई मे दयाराम ने 'दोहा', 'सोरठा' और सवैया छन्दो का प्रयोग किया है। सर्वाधिक प्रयोग दोहो का हुआ है। सतसई मे सोरठे १२, सवैया १ और ७१७ दोहे मिलाकर ७३० छन्द हैं। यो प्रकाशित सतसई मे ७३१ छन्द सख्या है परन्तु उसमे एक दोहा दो बार आया है।[३]

दोहा और सोरठा दोनो मात्रिक छन्द हैं। दोहा को विपरीत कर देने से सोरठा छन्द बन जाता है। दोनो मे ४८ मात्राएँ होती हैं अन्तर बस इतना ही है कि जहाँ दोहे मे १३ और ११ मात्राओ पर यति होती है वहाँ सोरठे मे ११ और १३ पर यति होती है।

काव्यज्ञो ने दोहे के अनेक भेद बताए है। 'प्राकृत पिंगल सूत्र' मे दोहे के निम्नलिखित भेद वर्णित हैं—

भ्रमरो भ्रामर शरभ श्येन,
मण्डूको मर्कट करभ
नरो मरालो मदकल पयोधरश्चलो वानरस्त्रिकल
कच्छपो मत्स्या शार्दूलोऽहिवर
व्याघ्रो विडाल शुनकस्तथा उन्दुर सर्प प्रमाण ॥[४]

---

१ दयाराम काव्य मणिमाला भाग ६ (गुजराती मे)
२ सतसई ७३०। ३ देखिए दोहा सख्या २२६, ६२६।
४ प्राकृतपिंगल सूत्रम् पृ० ३७ निर्णय सागर प्रेस।

ये २३ भेद हैं। इनमे एक ही नाम से दो भेद वर्णित है। इसलिए जगन्नाथ प्रसाद 'भानु' कवि ने अपने 'छन्द प्रभाकर' ग्रन्थ मे इन दोहो को पार्थक्य हेतु अलग-अलग नाम दिये हैं—

भ्रमर, सुभ्रामर, शरभ श्येन मडूक बखानहु।
मकट, करभ सु और नरहिं हसहि परिमानहु॥
गनहु गयद सु और पयोधर बल अवरेषहु।
वानर त्रिकल प्रतच्छ कच्छ पहू मच्छ विशेषहु॥
शार्दूल सु अहिवर ब्याल जुतवर विडाल अरु स्वान गनि।
उद्दाम उदर अरु सर्प शुभ तेइस विधि दोहा बरनि॥[1]

दोहो के सविधान मे अक्षर २६ से ४८ होते हैं जो क्रमश एक एक बढते जाते हैं। गुरु २२ से शुरू होकर क्रमश घटते घटते शून्य तक पहुँच जाता है इसी तरह ४ से शुरू होकर क्रमश दो दो सख्या म बढकर लघु ४८ की सख्या तक पहुँचता है। इनके कारण दोहों की सख्या २३ होती है। देखिए—

षड्विंशत्यक्षरो भ्रमरो गुरवो द्वाविंशतिर्लघवश्चत्वार।
गुरवस्त्रुट्यति द्वौ लघू वर्धते ततन्नाम विचारय॥[2]

गणप्रस्तार प्रकाशकार न इन दोहो के नामो को पक्षियो के नामो के साथ जोडा है और २१ भेद बताय हैं।

उपर्युक्त २३ भेदो मे भ्रमर, श्येन, व्याघ्र, विडाल, उदर और सर्प को छोडकर शेष सभी भेदो का प्रयोग दयाराम सतसइ मे मिलता है। इन दोहो का सक्षिप्त विवरण निम्नलिखित तालिका में दिया गया है—

भेद	अक्षर	गुरु	लघु
१ भ्रामर	२७	६	२१
२ शरभ	२८	२०	८
३ मण्डूक	३०	१८	१२
४ मर्कट	३१	१७	१४
५ करभ	३२	१६	१६
६ नर	३३	१५	१८

---

१ छन्द प्रभाकर पृ० ८५ सं० १९७९ सस्करण।

२ प्राकृतपिंगल सूत्रम्, पृ० ३७।

७ मराल	३४	१४	२०
८ मदकल	३५	१३	२२
९ पयोधर	३६	१२	२४
१० चल	३७	११	२६
११ वानर	३८	१०	२८
१२ त्रिकल	३९	९	३०
१३ कच्छप	४०	८	३२
१४ मत्स्य	४१	७	३४
१५ शार्दूल	४२	६	३६
१६ अहिवर	४३	५	३८
१७ शुनक	४६	२	४४

उपर्युक्त दोहों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करने से पूर्व यह कहना अनुचित न होगा कि दयाराम ने अनेक छन्दों का प्रयोग किया है और प्रस्तुत पाठ में जो यहाँ पाठान्तर आये हैं उनके कारण भी छन्द प्रयोगों में थोड़ा बहुत परिवर्तन आ सकता है।

१ भ्रामर—इस छन्द में २७ वर्ण होते हैं जिनमें ६ लघु और २१ वर्ण गुरु होते हैं—

> का का का का का का किं, का खा खा खा खाल।
> गो गा गा गे गाग गो, लली लाल ले लाल ॥[1]

२ शरभ—इस छन्द में २८ वर्ण होते हैं जिनमें ८ लघु और २० वर्ण गुरु होते हैं—

> म न नैनी न, मैंना मीन न नून।
> नौ मामा नें मानु ना, मानम नू नु नून ॥[2]

३ मण्डूक—इस छन्द में ३० वर्ण होते हैं जिनमें १२ लघु और १८ वर्ण गुरु होते हैं—

> बारी बारी बारियें, बारी लौं दे बारि।
> फिरि बारि दे बारि जनु, बारिद लौं बनवारि ॥[3]

४ मर्कट—इस छन्द में ३१ वर्ण होते हैं जिनमें १४ लघु और १७ वर्ण गुरु होते हैं—

---

१ दयाराम सतसई ७१३।
२ वही, ७१०।   ३ वही, १५७।

दारा निंदा सपवा, परजन जिन करि प्यार।
प्यारो सोई प्रान सें, जैसो भाट कटार ॥[1]

५ करभ—इस छन्द मे ३२ वर्ण होते है जिनमे १६ वर्ण लघु और १६ वर्ण गुरु होते हैं—

वल्लभ दें दुर्लभ कहा, सब हो जाके हाथ।
जगत मे मगल करें, बाबा बिट्ठलनाथ ॥[2]

६ नर—इस छन्द मे ३३ वर्ण होते हैं जिनमे १८ लघु वर्ण और १५ वर्ण गुरु होते हैं—

श्री राधावर आहि वस, ता पद पुष्कर खेह।
बदन करि माथू सदा, तापे नूतन नेह ॥[3]

७ मराल—इस छन्द मे कुल ३४ वर्ण होते हैं जिनमे २० लघु वर्ण और १४ वर्ण गुरु होते हैं—

श्रुति नेती मनगो अगम, त्रिगुन अक्षरातीत।
सो श्री गोपीनाथ कों, अभिवादन अगनीत ॥[4]

८ मदकल—इस छन्द मे ३५ वर्ण होते हैं जिनमे २२ वर्ण लघु और १३ वर्ण गुरु होते हैं—

चलि कहाँ, बोलें, कौन, पिय, क्यों, तो बिन कल नाहि।
धनि हैं, रुचि नहि, भौसि रखि राखे। ते तुव छाहि ॥[5]

९ पयोधर—इस छन्द मे ३६ वर्ण होते हैं जिनमे २४ वर्ण लघु और १२ वर्ण गुरु होते है—

श्री गुरु वल्लभ देव अरु, श्री विट्ठल श्री कृष्ण।
पद पकज, बदन करौं, दुखहर पूरन तृष्ण ॥[6]

१० बल—इस छन्द मे ३७ वर्ण होते है जिनमे २६ वर्ण लघु और ११ वर्ण गुरु होते हैं—

श्यामा आनन ससि लखन, चकोर तरसत नाह।
मान परब केतौं अक्यो, टरत न घूघट राह ॥[7]

११ वानर—इस छन्द मे कुल ३८ वर्ण होते हैं जिनमे २८ वर्ण लघु और १० वर्ण गुरु होते हैं—

---

१ दयाराम सतसई ३६७। २ वही, २।
३ वही, ५। ४ वही, ३। ५ वही, २१७।
६ वही, १। ७ वही, २५०।

वच न फेरियँ वदन की, अमल समल तहु होहि।
कृष्ण कृष्ण आयसु करो, अनघ रहे कुल द्रोहि॥[1]

१२ त्रिकल—इस छन्द मे ३९ वर्ण होते हैं जिनमे ३० वर्ण लघु और ९ वर्ण गुरु होते हैं—

फनि निवास दिवि, सिंधु, बिधु, सुधा नाहिं बिधु मूल।
गरल, पान, भव क्षार, क्षय, पति मृत, कठ विपूल॥[2]

१३ कच्छप—इस छन्द मे ४० वर्ण होते हैं जिनमे ३२ वर्ण लघु और ८ वर्ण गुरु होते हैं—

सिमल सुमन हरो सल लगि, रम्य समर यत दूर।
कृष्ण सुमन सरवत्र इक, लखि असमीप हुजूर॥[3]

१४ मत्स्य—इस छन्द मे ४१ वर्ण होते हैं जिनमे ३४ वर्ण लघु और ७ वर्ण गुरु होते हैं—

पनघट पनघट जाय मन, घट मनघट को ध्यान।
मनघट लाल चढाय के, अलि पनघट। सुख खान॥[4]

१५ शार्दूल—इस छन्द मे ४२ वर्ण होते हैं जिनमे ३६ वर्ण लघु और ६ वर्ण गुरु होते हैं—

कहत सहत हो पिसुन मल, अलहु न होत प्रकास।
अस लख लख सबकहु हरि, गहत नाहैं पद नास॥[5]

१६ अहिवर—इस छन्द मे कुल ४३ वर्ण होते हैं जिनमे ३८ वर्ण लघु और ५ वर्ण गुरु होते है—

मन विचार पल-पल पृथक, अक्षय सकल कथि कान।
जिमि कुसमनि उपकनि बरन, पलटैं अति भामान॥[6]

१७ शुनक—इस छन्द मे ४३ वर्ण होते हैं जिनमे ४४ वर्ण लघु और २ वर्ण गुरु होते हैं—

समर समर मन सरस छव, नटवर नगधर कृष्ण।
वस पदपय हर सिर धरत, अघहर सर सब शरण॥[7]

---

१ दयाराम सतसई ३६३।
२ वही, ३२२।
३ वही, ४२५।
४ वही, ७७।
५ वही, ३४०।
६ वही, ५१३।
७ वही, ७०६।

दयाराम के दोहे छन्द शास्त्र की दृष्टि से शुद्ध हैं। दयाराम ने अपनी प्रतिज्ञा का पालन पूर्णत किया है। केवल २६, २६, ४४, ४७ और ४८ वर्ण वाले दोहों के भेदों का प्रयोग नहीं मिलता है कुछ संशोधन और परिवर्द्धन के कारण इन प्रभेदों के उदाहरण भी भविष्य में मिलने की संभावना है।

'दोहा' के अतिरिक्त दयाराम ने सतसई में सोरठा छन्द का भी प्रयोग किया है। कुल १२ 'सोरठा' मिलते हैं। सोरठा छन्द में ११ और १३ मात्राएँ होती हैं। प्रथम चरण और तीसरे चरण म अन्त्यानुप्रास होता है और इस अनुप्रास मे एक गुरु और एक लघु होता है। अब दयाराम के कुछ सोरठों पर दृष्टिपात करें —

(१) लोक लाज कुल वेद, छूट सबै विवेक बल।
परे हृदे जब छेद, दुसह प्रेम के बान को॥

(२) जब तरुवर को फूल, तब वाकों फल होत हैं।
वे लखि नर मत भूल, जो फूल्यौं तों फल भयों॥[1]

उपर्युक्त उदाहरणों म सोरठा छन्द के नियमों का पूरा-पूरा पालन हुआ है। यति और अन्त्यानुप्रास दोनों चुस्त और दुरुस्त हैं। यहाँ कवि न विधान किए हैं उनका सुदृढ़ प्रतिपादन भी किया है।

सतसई म दयाराम ने सवया छन्द का एक प्रयोग किया है। इसम सात भगण और अन्त में गुरु है। यथा—

लाम सवाब सबै जस सेवत, श्रीवर पूरन सोलकला।
वाम न काम अयास कछु रसना जस गात सुसिद्ध कला॥
धाम सुधाम कहे त वयो जु सिरोमनि भासत नव्वलला।
लाम सदा सरवार धनी सु सुनी, घर बार सबा समला।[2]

ऽ ।। ऽ ।। ऽ ।। ऽ ।। ऽ ।। ऽ ।। ऽ ।। ऽ ।।
१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८

ऊपर दिए गए छन्दों स यह स्पष्ट हो जाता है कि दयाराम का छन्दों पर पूरा अधिकार था। उनके छन्द शुद्ध और सही हैं तथा उनमें पर्याप्त लाघव, मूर्त कल्पना और सटीक विधाना के दर्शन होते हैं।

---

१ दयाराम सतसई ६७, ४६३।
२ वही, ७२१।